हंसा तो मोती चुगें

हंसा तो मोती चुगे

[उपन्यास]

व्रज भूषण

प्रकाशक
पीताम्बर बुक डिपो
प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता
८८८ ईस्ट पार्क रोड, करौल बाग,

प्रकाशक :

पीताम्बर बुक डिपो

प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता

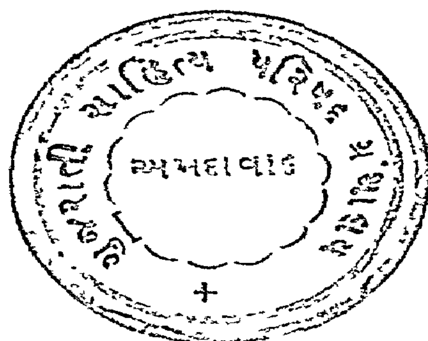
८८८, ईस्ट पार्क रोड, करौल बाग,

नई दिल्ली-११०००५

[दूरभाष कार्यालय : ५६६१३३
आवास : ५६२६१६]

[प्रथम संस्करण : १९७४]

[मूल्य : दस रु०]



मुद्रक :

पीताम्बर प्रिंटिंग प्रेस

४१ & ४२, बस्ती हरफूलसिंह,

दिल्ली-११०००

[दूरभाष : ५१२०४१]

बड़े शहरों की रात छोटी होती हैं। शहरों की इन छोटी रातों में कुदरत का कोई करिश्मा या दोष नहीं, बल्कि कुदरत के करिश्मे, इंसान ने ही इन रातों को भौतिकता की दौड़ में दौड़ाते हुए अनजाने में ही छोटा कर दिया है।

होटल, क्लब, सिनेमाघर, जुए के अड्डे, पान की दुकानें और जायज़-नाजायज़ मयखानों ने मिल बाँट कर शहरों की रातों को छोटा बनाने में चुपचाप अपना पार्ट अदा किया है।

घंटाघर के टंकोरे बज रहे थे। बारह टंकोरे बजाने के बाद घड़ी खामोश हो गई। रमेश एकटक घंटाघर की घड़ी की तरफ देखता रहा, फिर एक दार्शनिक मुस्कान छोड़कर आगे बढ़ा। मुख्य सड़क छोड़कर वह एक गली में घुस गया। उसे शार्ट कट करके जल्दी ही घर पहुँचना था। घर अब भी एक मील से ज़्यादा दूर था। वह नौकरी के सिलसिले में रेलवे के सुपरिन्टेन्डेन्ट श्री मलखानी के यहाँ आया था। वे घर पर नहीं थे। आठ बजे से लेकर लगभग बारह बजे तक उसने बाहर बेंच पर बैठकर उनका इन्तज़ार किया। अन्त में नौकर ने बताया कि वे क्लब गये हैं, पता नहीं कब तक लौटें, ज़्यादा अच्छा होगा कि अगले दिन मिला जाये।

ठंडी आह भरकर उठते हुए रमेश अगले दिन की बात सोचते हुए वहाँ से चल दिया। उसे बस के मिलने अथवा न मिलने की चिन्ता नहीं थी. कारण कि इस समय जेब में बस के लिए दस पैसे भी नहीं थे। भूख भी लग

रही थी। मजबूरी को धोखा देने के लिए मस्ती का बहाना करके वह गुन-गुनाने लगा। गलियाँ सूनी पड़ी थीं, कोई इक्का-दुक्का राहगीर नज़र आता था। कहीं-कहीं बन्द दुकानों के बाहर नौकरनुमा या मज़दूरनुमा आदमी सोने की तैयारियों में लगे हुए थे। कहीं बन्द होती हुई होटलों के बाहर भूठन के अधिकार को लेकर कुत्तों में संघर्ष हो रहा था। कभी-कभी गलियों के बहुत ही भीतर से कुत्तों के भौंकने व गुर्राने की आवाज़ें भी आती थीं। रमेश ऐसे ही गलियों से गुज़रता हुआ एक बड़ी-सी सड़क पर आ निकला। सड़क पर लेम्प-पोस्ट दूर तक अपना प्रकाश फैलाये हुए थे। एक पनवाड़ी की दुकान पर कुछ ग्राहक भी थे। रमेश आगे बढ़ता चला जा रहा था। पीछे से बस का हार्न चीखता हुआ पास से गुजरा और बढ़ती हुई सड़क के साथ आगे बढ़ गया। बस रमेश के घर की तरफ ही जा रही थी, मगर रमेश उसमें नहीं बैठ सकता था।

थोड़ी दूर चलकर रमेश ने मुख्य सड़क को छोड़ दिया और एक नाले के ऊपर से गुजर कर कच्चे रास्ते से आगे बढ़ा। कुछ ही कदम बढ़ा होगा कि उसे सामने से तीन आदमी कुछ खाते हुए अपनी तरफ आते दिखाई दिये। पास आने पर एक ने तीखी आवाज़ में पूछा—"ऐ, कौन हो तुम ?"

"आदमी हूँ।"

रमेश के मुँहफट जवाब से वह तिलमिलाया। उसका साथी बीच में बोल पड़ा—"अबे, आदमी तो हमें भी दिखाई दे रहा है, पर तू कौन है और कहाँ से आ रहा है ?"

"मैं कौन हूँ और कहाँ से आ रहा हूँ, यह सब पूछने वाले तुम लोग कौन हो ?"

तीनों आदमी कुछ गुंडे किस्म के थे। एक के हाथ में कागज़ की बड़ी-सी पुड़िया थी। वे तीनों समोसे खा रहे थे। एक ने समोसे के आखरी टुकड़े को मुँह में रखते हुए अपने साथी से कहा—"अब्दुल, यह ऐसे नहीं मानेगा, इससे सरकारी ढंग से बात करनी पड़ेगी।"

फिर वह रमेश से बोला—"क्या बजा है तुम्हारी घड़ी में ?"

"सुनाई नहीं दिया, अभी-अभी घंटाघर की घड़ी ने बारह बजाये हैं।"

रमेश के स्पष्ट और निर्भीक जवाब से वह फिर झुंझलाया और लगभग चीखकर बोला—"अबे, तेरी घड़ी में क्या बजा है ?"

"अबे तबे क्या लगाई है ? तू शरीफ नहीं, पर मैं तो शरीफ आदमी हूं। ज़रा तमीज़ से बात कर। मेरे पास घड़ी नहीं है।"

तीनों गुंडों में से एक समझदार भी था, जिसके हाथ में समोसों का पुड़ा था, वह आगे बढ़कर बोला—"अच्छा बड़े भाई, तमीज़ से बात करते हैं। पर एक बात बताओ यार, तुम्हें इतनी रात गये, इस सूनी जगह में हम तीन आदमियों के सामने डर नहीं लग रहा है ?"

"नहीं।" रमेश ने जवाब दिया।

"बहुत बहादुर हो !" दूसरा एक साथी बोल पड़ा।

"बहादुर नहीं, कड़का हूं, जेबें खाली हैं ! इसलिए अब डरूं किससे ? भूत-प्रेत से डरता नहीं, रही बात चोर-उचक्कों से डरने की, सो मैं समझता हूं कि तुम तीनों इतने थर्ड क्लास लुटेरे तो होगे नहीं कि मेरी पेन्ट, कमीज़ और फटी हुई चप्पलें भी लूट लोगे। इन तीन चीज़ों के सिवाय मेरे पास कुछ है नहीं। बताओ, अब डर कैसा ?"

"क्या सचमुच !" समझदार लगने वाला लुटेरा बोला।

रमेश उसी निर्भीकता और निसंकोचता के साथ बोला—"सच नहीं तो झूठ क्या है ! अपने साथियों से कहो मेरी जेबों की तलाशी ले लें, तब तक मैं भी एक-दो समोसे खा लूं, बड़ी भूख लगी है, तुम अकेले खा रहे हो, यह अच्छी बात तो नहीं।"

तीनों लुटेरे अपनी इस अजीबोगरीब आसामी को देखते रह गये और उसने पुड़ी में से समोसा उठाकर खाना शुरू भी कर दिया। खाते-खाते वह बोला—"माफ करना यारो, तुम्हारी कुछ इन्कम तो हुई नहीं और उल्टा नुकसान हो गया।"

"आदमी दिलचस्प हो।"

दूसरा साथी बोल पड़ा—"नहीं कादिर, यह हमें बेवकूफ बना रहा है। इसकी बातों में मत आओ। इसकी जेब में माल ज़रूर है।"

रमेश एक समोसे के दो टुकड़े करके अब तक भीतर ठूँस चुका था। पुड़े में से उसने दूसरा समोसा उठाते हुए कहा—"भाई तलाशी ले लो, जो माल मिले सब तुम्हारा!"

"सो तो लेंगे ही।"

समझदार लगने वाला गुंडा कादिर भी चुप रहा। रमेश निश्चिन्त होकर समोसा खाता रहा और दूसरे आदमी ने उसकी तलाशी लेना शुरू किया। पेन्ट की दोनों जेब खाली थीं। कमीज के ऊपर वाली जेब तो खाली दिखाई ही दे रही थी। तलाशी लेने वाला अपनी नाकामयाबी पर झुँझला उठा। उसने धमकी देते हुए कहा—"ऐ! बता, माल कहाँ छुपा रक्खा है। समोसे तो ऐसे खा रहा है, जैसे तेरे बाप का माल है।"

"फिर बदतमीज़ी! आखिर लुटेरा है न, अगर तमीज होती तो लुटेरा क्यों बनता। तूने भी तो मेरी जेब में ऐसे हाथ डाला था जैसे अपने बाप की जेब हो।"

"बताऊँ क्या?" कहते हुए उसने जेब से चाकू निकाल लिया। रमेश तनिक भी नहीं डरा और उसी दबंगपन से बोला—"अच्छा! सिर्फ लुटेरा ही नहीं, कायर और तंगदिल भी है। अपने दो साथियों के साथ इस सूनी जगह में मुझे चाकू निकाल कर डरा रहा है! मर्दानगी के नाम पर कुछ गैरत और शर्म है? मर्द बनता है, तो इन दोनों को आगे भेज दे, फिर बता।"

समझदार लगने वाला कादिर अपने साथी से बोला—"अब्दुल, क्या हो गया तुझे! तलाशी तूने ले ली, बेचारे के पास कुछ नहीं है। आदमी शरीफ और बहादुर है हमें भी कुछ ख्याल करना चाहिये।"

रमेश को वह आदमी और उसकी बात अच्छी लगी। वह बोला—"यह हुई कुछ बात! कद्रदानों की कमी नहीं गालिब! कादिर मियाँ, आप इतने अच्छे आदमी होकर इतने बुरे धन्धे में कैसे फँस गये।"

दोनों साथी कादिर की बात से सहमत होकर और रमेश को बिसार कर समोसे खाने में जुट गये। रमेश ने भी तत्परता से पुड़े में झांक कर कहा—"कादिर मियाँ, एतराज़ न हो तो तीसरा और आखरी समोसा खा लूं। क्या बताऊँ स्वाद, भूख, मुफलिसी और तुम, चारों ऐसे चौराहे पर मिले हो कि रास्ता नहीं सूझ रहा!"

कादिर मुस्कराकर बोला—"खाओ यार, एक ही समोसा बचा है। पर तुम से मिलकर आज मजा आ गया।"

समोसा खाते हुए रमेश ने कहा—"यह तो तुम्हारा सयानापन है कि मुझ से मिलकर तुम्हें मजा आ गया, मगर उस कज़ा के बारे में तुमने क्या सोचा जो देर-सवेर ऐसे काम करते रहने पर तुम्हारे सिर पर आयेगी?"

कादिर फिर मुस्करा दिया। उसका हाथ पकड़ कर बोला—"चाहते हुए कौन बुरा बनता है, मजबूरियाँ सब कुछ करवा लेती हैं। देख रहा हूँ कि तुम भी काफी बुरे दिन और हालात से गुज़र रहे हो। वैसे बातों से काफी समझदार और पढ़े-लिखे लगते हो।"

"कौन पूछता है पढ़े-लिखे ओर समझदारों को। असल बात तो माल और पैसे की है। कहा है न किसी सयाने ने कि जिसके पास नहीं पैसा वह भला आदमी कैसा।"

कादिर के दोनों साथी समोसा खाकर सिगरेट के कश लगा रहे थे।

कादिर ने कहा—"बस इसी बात ने मुझे भी लुटेरा बना दिया। वैसे यह मेरा धन्धा नहीं था। मैं ईमानदारी से मेहनत करते हुए ही पेट भरना चाहता था। मगर मेरी ईमानदारी हमेशा मेरे आड़े आई। फिर तंग आकर मुझे इस धन्धे में फँसना पड़ा।"

रमेश ने समोसा खा लिया था। वह अपने हाथ अपनी पेन्ट से पोंछते हुए बोल पड़ा—"बहुत खूब कादिर मियाँ! क्या बात कही है! मगर बात गलत कही है। ईमानदारी बचाने के लिये ही आड़े आती है, मारने के लिये कभी आड़े नहीं आती। खैर! तुम्हारी मर्ज़ी। वैसे ज़्यादा अच्छी बात यही होगी कि तुम भी और तुम्हारे साथी भी नेकी की कमाई..........."

सिगरेट का एक लम्बा कश खींचकर अब्दुल बोल पड़ा —"अबे ! नेकी की कमाई का ऐसा हिमायती है तो ये समोसे क्यों खाये ?"

"फिकर मत करो दोस्त, बदी की कमाई से खाये हुए इन समोसों का ब्याज समेत हिसाब चुका दूँगा।"

फिर वह कादिर से बोला—"बड़े भाई, तुम लोगों का हिसाब मैं जरूर चुका दूँगा। इस वक्त तुम मुझे सिर्फ दस पैसे दो ताकि मैं जल्दी ही बस से घर पहुँच सकूँ।"

कादिर जेब से पैसे निकालने लगा। तब तक तीसरा साथी बोल पड़ा—"कितना बुरा दिन आया है आज ! धन्धा बिल्कुल हुआ नहीं, समोसे खिलाये, ऊपर से पैसे भी दो।"

कादिर ने चवन्नी उसके हाथ पर रखते हुए कहा—"ईमानदारी से तंग आ जाओ और हमारे धन्धे में शामिल होने का इरादा हो जाये तो बात्रा की टेकरी पर आकर मुझसे मिल लेना।"

इस पर रमेश बोला—"शुक्रिया ! साथी साथ छोड़ दें, बेईमानी पाँव तोड़ दे और बदी की कमाई साँसों पर भारी बोझ डालने लगे तो मेरे पास आ जाना मैं गोकुलगंज के नाके पर रहता हूँ।"

२

रमेश वहाँ से पलट कर ज्योंही अपने रास्ते पर आगे बढ़ा त्योंही उसे किसी ने पुकारते हुए कहा—"सुनो बाबू !"

रमेश ठिठक कर खड़ा हो गया और पुकारने वाले की तरफ हैरत से देखने लगा। सड़क के किनारे गठरी बना एक भिखारी बहुत देर से वहाँ पड़ा था। चारों की बातों के दरमियान भी वह भिखारी गठरी बना चुपचाप पड़ा ही रहा। रमेश ने देखा कि वह गठरी अब एक लंगड़ा भिखारी बनकर लकड़ी

के सहारे उसकी ओर बढ़ रही है। पास आकर उसने कहा—"घबराओ मत मैं कोई चोर-लुटेरा नहीं।"

"चोर-लुटेरों से भी मैं घबराया कब था, पर तुम कौन हो ?"

"एक मामूली सा भिखारी।"

"कहो, क्या कहना है ?"

अपनी फटी पुरानी गुदड़ी को संभालकर कंधे पर रखते हुए वह बोला—"कहना क्या है बाबू, तुम लोगों की बातें सुन रहा था! लगा कि बड़ी परेशानी में हो तुम।"

अपने फटे हाल और गरीबी पर रमेश को भी रहम आ गया। उसके मन का दुःख और घना हो गया जब उसे मालूम हुआ कि एक भिखारी भी उसकी गरीबी और परेशानी पर तरस खा सकता है। भिखारी की हमदर्दी के प्रति कृतज्ञ-भाव दर्शाते हुए वह बोला—"हाँ बाबा, परेशान तो हूँ, पर अब किया क्या जाये!"

"क्या काम करते हो ?"

"फिलहाल तो काम ढूंढना ही एक काम है।"

"मतलब कि बेकार हो।"

"हाँ।"

"बाबू, आप खानदानी आदमी हैं, पढ़े-लिखे हैं, अगर आपके मन को बुरा न लगे तो मैं आपकी कुछ मदद कर सकता हूँ ?"

रमेश ने उस भिखारी को सिर से पाँव तक निहारा। पचास साल की उम्र के आस-पास लगने वाला, भीख के टुकड़ों पर पलने वाला, फटे हाल भिखारी उसकी मदद करने की बातें कर रहा है। वह और ज्यादा हैरान हुआ। भिखारी उसकी हैरानी को ताड़ गया। वह कहने लगा—"हैरान होने की जरूरत नहीं कभी-कभी जिन्दगी ऐसे अनजाने मोड़ से गुजरती है कि इंसान सोच भी नहीं सकता। मुझ जैसा भिखारी आपकी मदद करे यह सचमुच ताज्जुब की और हैरान होने की बात है, मगर जब मैं आपको सब कुछ बताऊँगा, तब आपकी हैरानी दूर हो जायेगी।"

इतनी रात गये ऐसी सूनसान जगह में एक भिखारी का इस तरह हमदर्दी जताना अब तक रमेश के लिये हैरानी की बात तो थी, मगर किसी भावी आशंका से एकाएक उसे कंपकपी आ गई। बचपन में उसने अलादीन के चिराग की बातें और कहानियाँ पढ़ी थीं। लोगों से जिन और भूतों के किस्से भी सुने थे। वही सब सोचकर वह तनिक विचलित हो गया। उसने पीछा छुड़ाने के इरादे से कहा—"बाबा, तुम्हारी हमदर्दी के लिये बहुत-बहुत शुक्रिया! मगर अब मैं....."

भिखारी ने उसकी बात काटते हुए कहा—"खाली शुक्रिया से क्या मतलब, मुझे खिदमत का मौका तो दो।"

इतना कहकर उस भिखारी ने बगल में लटकती हुई अपनी पोटली में हाथ डाला और भरी हुई मुट्ठी बाहर निकाल कर रमेश के सामने फैलाते हुए कहा—"लो, इसे रख लो, काम आयेंगे। और चाहिये तो और भी लो।" कहकर उसने दूसरा हाथ पोटली में डाला।

रमेश ने उसे टोकते हुए कहा—"ठहरो, ठहरो! आखिर मुझ पर यह सब मेहरबानी क्यों?"

भिखारी संजीदा होकर बोला—"मालिक के लिये इसे मेहरबानी मत कहो, यह एक गरीब के दिल का दर्द है। तुम परेशान हो, मैं तो खैर पैदा ही परेशानियों में हुआ हूँ। गरीब का दिल मत तोड़ो और इसे कबूल करो।"

रमेश अजीब कशमकश में फँस गया। उसने समझाते हुए कहा—"बाबा, यह ठीक है कि मैं परेशानी में हूँ, मगर साथ-साथ नौजवान हूँ, मर्द हूँ। भगवान ने मुझे हाथ पाँव दिये हैं, मैं मेहनत कर सकता हूँ, कमाकर खा सकता हूँ।"

भिखारी ने अपना हाथ पीछे हटा लिया और वापिस पोटली में पलट दिया। रमेश को लगा कि उसकी बात से भिखारी के मन को धक्का सा लगा है। वह बोला—"बाबा, बुरा नहीं मानना। आखिर मैं तुम्हारी मेहनत की कमाई कैसे ले सकता हूँ।"

"नहीं बाबू, यह बात नहीं, तुम सोचते हो कि यह भीख की कमाई है। तुम भीख की कमाई लेना नहीं चाहते! पर इस भीख को हासिल करने के

लिये भी मुझे मेहनत करनी पड़ी है। तुम्हें बुरा जरूर लगेगा, मगर भीख की कमाई चोरी की कमाई से ज्यादा बुरी नहीं। चोरी की कमाई में से तुमने खुशी-खुशी समोसे खा लिये। दस पैसे बस के लिये उधार माँग लिये। क्या मैं चोरों से भी गया गुजरा हूँ।"

होठों पर उंगली नचाते हुए रमेश ने विस्मय भरे स्वर में कहा—"तो तुम सब कुछ देख सुन रहे थे ?"

"बिल्कुल।"

"ऐसी सूनसान जगह में इस वक्त, मुझे नहीं लगता कि तुम यहाँ भीख माँगने के इरादे से पड़े हो।"

"दिन में तो यह जगह सूनसान नहीं होती। भीख देने वाले भीख दिन में ही देते हैं।"

"जो कुछ भी है, ठीक है, अब मैं चलूंगा।"

"तो मेरा दिल तोड़ कर जाओगे ?"

रमेश लगभग झुंझलाकर बोल उठा—"अरे समझते क्यों नहीं बाबा! उन लुटेरों का हिसाब तो मुझे चुकाना ही पड़ेगा। तुम्हारा अहसान मैं कैसे और कहाँ चुकाऊँगा।"

"कहाँ अहसान की बात ले बैठे। तुम्हारी तकलीफ और दर्द में हिस्सेदार होने के लिये अहसान कैसा।"

"नहीं बाबा, मुझे माफ करो, मुझ से यह नहीं हो सकेगा।"

"चलो न सही, नौकरी तो करना चाहोगे ?"

रमेश इस प्रश्न पर फिर चौंका। भिखारी के अजीबोगरीब व्यवहार और एक के बाद एक उसकी बातें हैरत में डालती जा रही थीं। उसने फिर एक भरपूर दृष्टिपात किया। बिना माँगे पैसे और नौकरी देने वाले इस भिखारी को इस समय और स्थान के साथ वह कहीं भी मानसिक रूप से स्वीकार नहीं कर पा रहा था, मगर उसका रागपूर्ण आग्रह उसे द्विविधा में डाले हुए था।

एक बार फिर भिखारी को ऊपर से नीचे तक देखकर उसने पूछा—"बाकी सब बातें बाद में, पहिले मुझे एक बात बताओ।"

"पूछो बाबू ?"

"तुम हो कौन ?"

"एक मामूली सा भिखारी।"

"तुम न मामूली हो न भिखारी हो, इतना तो समझा, पर सचमुच हो क्या, यह बात अब तक नहीं समझा।"

"यकीन करो, मैं भिखारी ही हूँ।"

"भिखारी भीख माँगते हैं, बिना माँगे भीख और नौकरी नहीं देते फिरते।"

"लो, मेरी खिदमत और हमदर्दी को बेगाना रंग दे रहे हो।"

रमेश ने लम्बी साँस ली और कहा—"चलो अब तुम्हारी हमदर्दी को याराना रंग देंगे। बताओ, क्या नौकरी है ?"

"नौकरी बहुत अच्छी है, तनिक-सी हिम्मत ज़रूर चाहिये।"

"हिम्मत के मामले में भगवान मुझ पर काफी मेहरबान है।"

"हिम्मत के अलावा थोड़ी-सी चुस्ती और चालाकी भी हो तो बहुत अच्छी बात है।"

"चुस्ती मिल जायेगी......पर......चालाकी......ज़रा मुश्किल है।"

"खैर ! वह भी आ ही जायेगी। अपने मालिक का कहना हर हालत में मानना पड़ेगा। वह पाँच सौ रुपये तक तनख्वाह देगा।"

रमेश फिर झुँझला उठा और बोला—"वह सब ठीक है, तुम नौकरी तो बताओ कहाँ है ? क्या है ?"

"मेरे पास है।"

"क्या ?" रमेश इतने जोर से चौंका जैसे उसने चिड़िया को चोंच में हाथी ले जाते हुए देख लिया हो।

"चौंको मत, भीख माँगने के अलावा मैं छोटा-मोटा धन्धा भी करता हूँ।"

एक तिक्त और उत्तेजना के मिले-जुले भाव से रमेश ने पूछा—"किस चीज का ?"

"चरस और गाँजे का !"

अपनी हथेली सिर पर ठोंकते हुए बोला—"ओ माई गॉड ! चार घंटे तक इन्तज़ार करने और चाहने पर भी सही आदमी मिला नहीं और न चाहने पर चार गलत आदमी खुद आ मिले।"

भिखारी मुस्कराकर बोला—"बाबू, गलत और सही का फैसला तुम मत करो, तुम तो सिर्फ इतना फैसला करो कि नौकरी करोगे या नहीं ?"

मात्र जिज्ञासावश रमेश ने पूछ लिया—"मुझे क्या-क्या करना होगा ?"

"शहर में अलग-अलग जगहों पर बैठे मेरे जैसे कुछ-एक भिखारियों को भीख में रोटी, कपड़ा या नकद देते हुए चरस व गांजा की पुड़िया पकड़ा देनी होगी।"

उसी जिज्ञासा-भाव और शुद्ध शरारत से रमेश ने फिर पूछा—"यह चरस और गाँजा मिलेगा कहाँ से ?"

"हमारे दो तीन ठिकाने हैं, जो तुम्हें बता दिये जायेंगे।"

"तनख्वाह क्या बताई थी तुमने ?"

"पाँच सौ रुपये नकद साथ में होली दिवाली पर भारी बख्शीस।"

"पकड़ा गया तो क्या होगा ?"

"हम लोग जमानत देकर छुड़ा लायेंगे ?"

रमेश बेबाक हँस पड़ा। उसे हँसता देखकर भिखारी ने पूछा—"हँसते क्यों हो ?"

"इसलिये कि तुमने गलती से मुझे कुत्ता समझ लिया।"

"नहीं तो।"

"पहिले टुकड़ा डाल रहे थे और अब जाल डाल रहे हो।"

"सोच लो, बुरे वक्त से गुजर रहे हो।"

"फिलहाल तो बुरे आदमियों के सामने से गुजर रहा हूँ।"

"मतलब यह कि हमारे साथ धन्धा करना जँचा नहीं ?"

"बिल्कुल नहीं।"

भिखारी ने अपनी बगल की पोटली को ज़ोर से हिलाकर उसके भीतर के पैसे बजाते हुए कहा—"रस्सी जल रही है, मगर बल नहीं जल रहे।"

ईमानदारी और नेकी के गर्व से भीगते हुए रमेश ने कहा—"धन्धा करने वाले भिखारी बाबा, रस्सी में बट ही असल चीज़ होती है। बट के बिना रस्सी बनती ही नहीं। सच्ची बात तो यह है कि बट ही रस्सी होती है। रस्सी जलने के बाद भी बट का कायम रहना इस सच्चाई को बताता है कि बट की हस्ती रस्सी की हस्ती से बड़ी होती है! ऐसे ही इंसान सिर्फ रस्सी है और उसका ईमान बट। मुसीबतों की आग में इंसान जल मरे, मगर ईमान कायम रहे तो दुनिया याद रखती है और अगर लालच की लपटों में ईमान जल जाये और इंसान बच जाये तो दुनिया उस पर ऐसे ही थूकती है जैसे रास्ते की राख पर थूका जाता है। अच्छा, राम-राम।" कहकर रमेश वहाँ से चल दिया।

३

रमेश ने सोचा कि बस पकड़ ले, मगर तब तक बस का चलना बन्द हो चुका था। पैदल ही वह घर पहुँचा। दरवाज़े के बाहर से उसने माँ के खाँसने की आवाज़ सुनी। तेज़ी से वह भीतर पहुँचा।

बीमार माँ दोनों हाथों से सिर पकड़े ज़ोर-ज़ोर से खाँस रही थी। रमेश ने दौड़कर माँ को सभाला। उसके पास बैठकर कमर सहलाने लगा। खाँसी कम हुई तो माँ ने गला साफ करते हुए पूछा—"कहाँ रह गया था अब तक?"

"क्या बताऊँ माँ, मलखानी साहब क्लब गये हुए थे बारह बजे तक उन्हीं का इन्तज़ार करता रहा।"

चारपाई पर पसरते हुए माँ ने कहा—"इतनी देर तक बाहर मत रहा कर बेटा।"

रमेश एक दयनीय-भाव से अपनी रुग्ण माँ की ओर निहारे जा रहा था। निरे बचपन में पिता का हाथ सिर से उठ गया था। माँ ने कपड़े सीकर जैसे-तैसे इकलौते बेटे को पढ़ाया-लिखाया और परवरिश की। लेकिन, विधि की विडम्बना और दुर्भाग्य की काली छाया इतने हठीले निकले कि बी. ए. पास करने के बाद भी रमेश को ढंग की कोई नौकरी भी नहीं मिल रही थी। जमाने की चाल और चलन के मुताबिक नौकरी हासिल करने की जितनी भी चालू तरकीबें होती हैं, उनसे रमेश का कोई प्रत्यक्ष परिचय नहीं था। किसी के समझाने और सुझाने पर एक दो चालू तरकीबों के बारे में कुछ मालूम हुआ भी तो उसने कानों में ऐसे उंगली रख ली जैसे श्रवणकुमार ने, पिता की हत्या के लिये उकसाने पर, रक्खी होंगी या औरंगजेब को वापिस गद्दी शाहजहाँ को सौंपने के सुझाव देने पर उसने अपने कानों पर रक्खी होंगी। यद्यपि पिता एक साधारण से पोस्टमेन थे, लेकिन पिता का चारित्रिक व्यक्तित्व असाधारण था। माँ ने भी निर्धनता, प्रतिकूल परिस्थितियों और कष्टों के कड़वे घूँट पीकर अपने बेटे को नेक, ईमानदारी, शरीफ और सच्चा इंसान बनाने के लिये जी-जान जुटा दिया था। वह अपने बेटे को पति के चरण-चिन्हों पर चलाने में ही लगी रही। अपनी इस लगन में वह सफल भी हुई। जैसा कि आज तक होता आया है, सच्चाई और नेकी पर चलने वाले इन माँ-बेटे को नैतिक सफलता का मूल्य घोर आर्थिक विफलता से चुकाना पड़ रहा था।

संसार के अन्य किसी राष्ट्र अथवा समाज में ऐसा हो अथवा न हो लेकिन भारत में और इसके समाज में कहीं ऐसी कोई अनजानी और अदृश्य जर्जरता, रुग्णता, अभिशाप और बद्-दुआ अटकी पड़ी है कि यहाँ नैतिक धरातल पर सीना तानकर खड़े हुए व्यक्ति की कमर आर्थिक रूप से टूटी हुई होती है। सच्चाई के नाम पर जिनका सिर ऊँचा होता है, आर्थिक रूप से उनके पाँव कटे हुए होते हैं। नैतिक सफलता और आर्थिक विफलता एक सिक्के के दो पहलू बनकर रह जाते हैं? ऐसा क्यों है, इसका रहस्य क्या है? इसके

मूल में कारण क्या है ? यह जानने के लिये न तो किसी ने कोशिश की न ज़रूरत समझी। क्योंकि, बिना इसके जाने ही समाज की गाड़ी, भैंसागाड़ी की तरह, चलती तो है।

चन्द क्षणों में रमेश क्या कुछ सोच गया ! माँ की दयनीय स्थिति देखकर उसका मन हाहाकार कर उठा। करुण दृष्टि से माँ को देखकर वह सोचने लगा कि दुर्भाग्य ने उसे इतना असहाय और विवश क्यों वना दिया कि वह अपनी रुग्ण माँ का इलाज भी नहीं करा सकता।

वेटे को विचारमग्न देखकर माँ ने पूछ लिया—"तू किस सोच में पड़ गया।"

"सोचता हूँ माँ, ऐसा क्यों है।"

"इससे आगे सोच वेटा।"

रमेश ने एक अर्थपूर्ण दृष्टि माँ के चेहरे पर डाली। अभाव से उत्पन्न इस मानसिक तनाव के बीच भी उसके मन में गर्व की एक हल्की-सी झंकार उठी। उसे अपनी माँ पर गर्व हुआ जो ऐसी दुखपूर्ण स्थिति में भी अपने मानसिक संतुलन को बनाये हुई थी। माँ ने फिर कहा—"तू अपना पुरुषार्थ करता रह मेरे बच्चे, आगे भगवान जो करेगा सो होगा। इस अपनी नेकी और ईमानदारी से मत टलना।"

"वह सब तो ठीक है माँ, मगर यह नेकी और ईमानदारी जान की दुश्मन वनी बैठी है। तुम आज इतने दिनों से बीमार हो। मेरी और तुम्हारी दोनों की नेकी और ईमानदारी इतने सामान नहीं जुटा सकी है कि तुम्हारा इलाज हो सके।"

माँ ने खाँसते हुए गला साफ किया और बोली—"तू बहस में क्यों पड़ गया है रे ! जो कुछ है ठीक है।"

वात खत्म करने के साथ ही माँ को जोर की खाँसी आई। रमेश ने संभालने की कोशिश की, पर खाँसी इस वार देर तक ठहरने का इरादा लेकर आई थी। खाँसते-खाँसते जब माँ का मुँह लाल हो गया और सारा

शरीर सूखे पत्ते की तरह हिल उठा तो रमेश का धैर्य भी टूटने लगा। वह माँ की कमर सहलाते हुए बोला—"माँ, मैं डाक्टर को बुला लाता हूँ।"

माँ ने खाँसते हुए हाथ के इशारे से मना किया।

"मना क्यों करती हो माँ, देखो न, तुम्हारी तबियत बिगड़ती जा रही है।"

खाँसना कम हुआ तो गला साफ करते हुए माँ ने कहा—"तू पगला क्यों बन रहा है। इस वक्त कहाँ मिलेगा तुझे डाक्टर।"

रमेश भी छोटे बच्चों की तरह मचलकर हठ करते हुए बोला—"मैं डा० खन्ना को जगा दूँगा। वैसे तो वे रात को देर तक अपनी डिस्पेन्सरी में होते हैं।"

माँ ने प्यार से उसका गाल सहलाते हुए कहा—"क्यों परेशान हो रहा है। सुबह से तूने कुछ खाया नहीं। जा, रसोई में रोटी और चटनी रखी है। खा कर सो जा। यह तो बुढ़ापे और कमजोरी की खाँसी है। घबराता क्यों है।"

पर रमेश भी जैसे जिद् पर उतर आया। वह बोला—"नहीं माँ, मैं तुम्हारी बात नहीं सुनूँगा।" और वह बाहर की ओर चल दिया।

"अरे सुन तो!" माँ कहती ही रह गई!

आधी से ज्यादा रात जा चुकी थी। चारों तरफ एक बोझिल-सी खामोशी व्याप्त थी। रमेश गली से निकल कर बाहर चौक में आया। रामभरोसे दूध वाले की दुकान खुली थी और एक-दो ग्राहक वहाँ खड़े थे। चौक से निकलकर वह एक छोटी सड़क की ओर बढ़ गया। जहाँ पहली इमारत के नीचे ही डा० खन्ना की बहुत बड़ी डिस्पेन्सरी थी। डिस्पेन्सरी के पिछवाड़े ही उनका घर भी था। रमेश जब वहाँ पहुँचा तो बाहर कम्पाउन्ड में अँधेरा था। बरान्डे की लाईट ऑफ थी। मगर भीतर रोशनी भी थी और कुछ चहल-पहल भी थी। वह कम्पाउन्ड और बरान्डा पार करते हुए भीतर घुसता चला गया। मुख्य द्वार पर गया तो उसने देखा कि विजीटर्स रूम की बैंच पर एक अधेड़ सम्पन्न-सा व्यक्ति चिन्तातुर बैठा हुआ है। उसने पूछा—"डाक्टर साहब कहाँ हैं?"

"अन्दर टेवल पर हैं।"

वह भी उस व्यक्ति के समीप जा वैठा। वह व्यक्ति आतंकित, भयातुर और आशंकित दृष्टि से रमेश को देखने लगा। उस व्यक्ति के इस भाव से देखना रमेश ने भी देख लिया। वह पूछ वैठा—"कोई मरीज़ अन्दर है ?"

"हाँ !" घवराते हुए छोटा-सा उत्तर दिया उसने।

"आप मरीज़ के साथ आये हैं ?"

"हाँ।" वह और अधिक घवरा गया।

"आज डाक्टर साहव काफी देर तक हैं। वैसे इस वक्त तक डिस्पेन्सरी वन्द कर देते हैं।"

"हाँ।"

रमेश ने हैरत से उसके मुँह की ओर देखा। यह जानने के लिए कि यह सचमुच आदमी ही वोल रहा है या 'हाँ' से भरी हुई किसी टेपरेकार्डर से आवाज़ आ रही है। उसने देखा कि उस व्यक्ति का चेहरा भय और घवराहट से सिकुड़ गया है, और उसकी उपस्थिति उस व्यक्ति के लिये असहनीय हो गई है। रमेश भी अधीर हो रहा था। उसने फिर पूछा—"डाक्टर साहव कव तक वाहर आयेंगे ?"

"मालूम नहीं।"

रूखा-सा उत्तर पाकर रमेश ने फिर उसके चेहरे पर अपनी आँखें चिपका दीं। वह फिर पूछ वैठा—"टेवल-रूम में गये कव हैं ?"

"थोड़ी देर पहले।"

डा० खन्ना का कम्पाउन्डर टेवल रूम से वाहर निकल कर वाहर आया तो रमेश ने ईमानदारी से अपने पूर्व परिचय का ज्ञापन देने के लिये मुस्कराकर उसका अभिवादन किया, लेकिन उसने इस स्वस्थ अभिवादन का उत्तर चौंक कर दिया। वह इतना अधिक चौंका कि उसने सामान्य शिष्टाचार के नियमों का भी उल्लंघन कर डाला और मुँह ऐसा वनाया और इतना टेढ़ा-मेढ़ा किया मानो उसके मुँह पर भूकम्प ही आ गया हो। फिर स्वर में नीम की कड़वाहट लेकर रमेश की तरफ वढ़ते हुए पूछा—"क्या है ?"

"कहाँ क्या है ?"

"मैं पूछता हूँ इस वक्त क्यों आये हो ?"

रमेश को उसका व्यवहार अच्छा नहीं लगा। वह भी तनिक उत्तेजित होकर बोला—"वक्त का क्या सवाल है, बीमारी क्या टेलीफोन करके मरीज के पास आती है। और क्यों का सवाल भी क्यों उठा। यहाँ जो आयेगा डाक्टर के लिये आयेगा, तुम्हारे दर्शन करने तो कोई नहीं आयेगा।"

गरम मसाले जैसा गरम और तेज जवाब सुनकर कम्पाउन्डर आपे से बाहर हो गया। जवानी से काफी आगे और बुढ़ापे से थोड़ा-सा पीछे गुजरने वाला यह कम्पाउन्डर पिछले कई सालों से डा० खन्ना का खास आदमी था। डा० का विश्वास और समर्थन उसे प्राप्त था अतः वह मरीजों की ओर विशेष ध्यान देने की जरूरत नहीं समझता था। वह लगभग चीखकर बोला—"चले जाओ यहाँ से। इस वक्त डाक्टर साहब को फुरसत नहीं है।"

रमेश बैंच से खड़ा हो गया और दो कदम आगे बढ़कर बोला—"यहाँ से जाऊँगा और डाक्टर को लेकर जाऊँगा। फुरसत उन्हें निकालनी ही पड़ेगी।"

अहम और तिरस्कार का एक ऐसा अरुचिकर भाव कम्पाउन्डर के चेहरे पर फैल गया, जैसा भाव मूर्ख सत्ताधारियों के चेहरों पर प्रायः विद्यमान रहता है। वह उसी तरह अकड़ कर बोला—"देखता हूँ कैसे ले जाओगे तुम डाक्टर को अपने साथ।" इतना कहकर वह वापिस भीतर चला गया।

चन्द क्षण बीतने पर डा० खन्ना बाहर आये। वे वॉश बेसिन की ओर बढ़ गये। खूब अच्छी तरह हाथ धोकर और वहाँ टँगे तौलिये से हाथ पोंछकर वे मुस्कराते हुए रमेश की ओर बढ़े। पास आकर उसके कंधे पर हाथ रखकर बोले—"आओ मेरे साथ।"

रमेश उनके पीछे-पीछे उनके कन्सल्टिंग रूम की तरफ हो लिया। भीतर जाकर डा० खन्ना अपनी कुर्सी पर बैठ गये। मेज पर पड़े सिगरेट के पेकेट से सिगरेट निकाल कर उसे सुलगाते हुए उन्होंने पूछा—"कहो क्या बात है ?"

"माँ की तबियत बहुत खराब है डाक्टर साहब।"

"हूँ ···· ऊँ!" मुँह ऊपर करके धुँआ छोड़ते हुए उन्होंने कहा।

"जल्दी चलिये डाक्टर साहब।" अधीर होकर रमेश ने कहा।

एक और लम्बा कश खींचने के बाद डाक्टर ने कहा—"भाई जल्दी चलने को कहते हो, पर पेमेंट जल्दी क्यों नहीं करते। कौन डाक्टर है जो दो-दो साल तक ठहरता है। कुछ मालूम है कितना बिल हो गया है तुम्हारा।"

रमेश ने गिड़गिड़ाकर कहा—"बस डाक्टर साहब कुछ दिन की बात है, नौकरी लगते ही मैं आपका एक-एक पैसा चुका दूँगा।"

सिगरेट के गुल को एश-ट्रे में छोड़ते हुए डाक्टर ने कहा—"सुना है नौकरी तो तुम कहीं करते ही नही हो।"

"ढंग की नौकरी मिल नहीं रही है, मिलते ही कर लूँगा।"

"खैर! मैं पिछले दो साल से तुम्हारी माँ का इलाज कर रहा हूँ और आगे भी करता रहूँगा, लेकिन आज तुम्हें मेरा एक काम करना होगा।"

रमेश डाक्टर की बात से कुछ हैरान हुआ। वह कहने लगा—"डाक्टर साहब, जो आप कहेगे, मैं करूँगा, मगर इस वक्त तो आप मेरी माँ को देखने चलिये।"

"भई मेरा काम ऐसा है जो तुम्हारे साथ चलने से पहिले ही होना चाहिये।"

"ऐसा क्या काम है डाक्टर साहब ?"

"तुम करो तो कहूँ।"

"करना ही पड़ेगा।"

"घबराओ मत, काम के लिये तुम्हें भारी मेहनताना भी मिलेगा।"

रमेश ने विस्मय भरी अपनी आँखें डाक्टर के चेहरे पर अटका दीं, जहाँ एक कुटिल-भाव तैर रहा था। वह बोला—"आप मेहनताने की बात जाने दीजिये, जल्दी से काम बताइये।"

कुशल राजनीतिज्ञ की तरह पहलू बदलते हुए डाक्टर ने कहा—"देखो

रमेश, काम ऐसा है जिसे करना तुम शायद पसन्द न करो, लेकिन अपनी माँ की खातिर तुम्हें इस वक्त हालात से समझौता कर लेना चाहिये। काम के अलावा एक और बात है कि इसके बारे में किसी को तनिक भी मालूम न हो, वर्ना मैं और तुम दोनों जेल के भीतर होंगे।"

जेल का नाम सुनकर रमेश के बदन में सनसनी दौड़ गई। वह दीन-भाव से बोला—"डाक्टर साहब, मेहरबानी करके ऐसे काम में मुझे मत फँसाइये, जिसमें जेल का डर हो।"

"डरते क्यों हो, सफाई से करोगे तो कुछ भी नहीं होगा।"

"पर काम तो बताइये ?"

"बेवक्त, बेज़रूरत और बेजान पैदा हुए एक बच्चे को कपड़े में लपेट कर चुपचाप नाले के उस पार छोड़कर आना है।"

रमेश का खुला मुँह खुला ही रह गया। डाक्टर के इस घिनौने काम के बारे में सुनकर वह भावशून्य हो गया। जल्दी ही प्रकृतिस्थ होकर वह बोला—"यह काम मुझ से कैसे होगा डाक्टर साहब ?"

"तो फिर ठीक है, मैं खुद करूँगा, जब यह काम मैं करूँगा तो तुम्हारी माँ को देखने कैसे चल सकूँगा।"

डाक्टर ने रमेश के कच्चे और कमज़ोर स्थान पर हाथ रख दिया था। रमेश अनमना होकर सोचने लगा कि क्या करे क्या न करे। डाक्टर का बताया काम करना तो उसके लिये कल्पनातीत ही था, लेकिन दूसरी ओर माँ का खाँसता हुआ चेहरा भी आँखों के सामने उभर आया। ज़रूरत की मार, माँ के प्यार और वक्त के आगे हार ने उसके मुँह से कहलवाया—"तो मुझे बच्चे को नाले पर छोड़कर आना होगा ?"

"हाँ।"

"अगर किसी ने देख लिया और कुछ पूछा तो ?"

"इस वक्त कौन देखने बैठा है। हम एक बड़े थैले में इस ढंग से रखकर देंगे कि किसी ने ले जाते हुए देखा तो भी शक-शुबाह नहीं होगा।"

विवशता भरे स्वर में वह बोला—"डाक्टर साहब, कहीं मैं फँस गया तो ?"

"कहीं नहीं फँसोगे। तुम जल्दी से नाले की तरफ चलो और मैं तुम्हारी माँ को देखने तुम्हारे घर पहुँचता हूँ।" डाक्टर ने फिर से अपने और उसके बीच माँ को ला खड़ा किया। वह तपाक से उठा और बोला—"तुम यहीं ठहरो, मैं सब बन्दोबस्त करता हूँ।"

इतना कहकर डाक्टर कमरे से बाहर हो गया। रमेश को अब बेंच पर बैठे व्यक्ति की घबराहट और कम्पाउडर के दुर्व्यवहार का रहस्य समझ में आने लगा। उसके अनुमान से वह व्यक्ति लड़की का पिता था, जो पैसे के बल पर अपने ऊपर पड़े कलंक को, डाक्टर को धोबी बनाकर धोने की कोशिश में था। कलंक का और उसे धोने वाले धोबी का रहस्य कहीं खुल न जाये, इसी कारण उसकी आकस्मिक् और बेवक्त उपस्थिति कम्पाउन्डर को असह्य हो गई थी। लड़की का पिता भी रहस्य खुल जाने के भय से अनजान आदमी के सीधे सवालों को टेढ़ा समझ कर घबरा गया।

डाक्टर एक बड़ा-सा थैला हाथ में लेकर आ पहुँचा और रमेश की ओर बढ़ाते हुए बोला—"लो पकड़ो और जल्दी ही निकल चलो।"

रमेश कभी डाक्टर और कभी थैले की ओर देखने लगा। उसके हाथ पाँवों का कम्पन उसकी आत्मा को भी हिलाने लगा।

उसे विचारमग्न देखकर डाक्टर ते जेब से सौ का नोट निकाल कर उसकी ओर बढ़ाते हुए कहा—"अरे भाई लो ना, सोच क्या रहे हो। इसे नाले पर फेंक कर पहुँचो, मैं वहाँ मिलूँगा। यह नोट भी रख लो। सुबह माँ के लिये दवाइयाँ भी तो लानी होंगी।"

रमेश में एकाएक न जाने कौन-सी चेतना उठी और वह लगभग चीखते हुए बोल पड़ा—"नहीं डाक्टर नहीं। हरगिज नहीं !! अपनी माँ के प्राण बचाने के लिये मैं किसी दूसरी माँ के पाप का बोझ नहीं उठाऊँगा।" कहकर वह कमरे से बाहर हो गया। डाक्टर भी देखता ही रह गया।

पौ फटी और रमेश घर के आँगन में दाखिल हुआ। उसने वहीं से देखा कि कमरे में बिछी माँ की खाट खाली पड़ी है। अन्दर रसोई से उसे बर्तनों की आहट सुनाई दी। पर माँ तो पिछले कई दिनों से इतनी जल्दी उठकर रसोई में नहीं गई थी। वह भीतर घुसकर रसोई की तरफ बढ़ा तो वहाँ उसे शीला सामने बैठी, दूध गरम करती नजर आई। वह चौंक कर बोला—"शीला, तुम ?"

"हाँ।"

"माँ कहाँ है ?

"आपको ढूँढने गई हैं।"

"मुझे ढूँढने गई है!" रमेश मुँह ही मुँह में बुदबुदाया।

"रात भर कहाँ रहे आप ?"

रमेश चुप रहा। शीला ने फिर पूछा—"माँ कितना परेशान और बेचैन हो गई। एक तो खुद बीमार, ऊपर से आप रात भर से बाहर, कितनी तकलीफ हो जाती है।"

लाचारी से वह बोला—"क्या बताऊँ! पर माँ मुझे ढूँढने गई कहाँ है ?"

"पिता जी और माँ दोनों वैद्य जी के यहाँ गये हैं ताकि किसी को डाक्टर के यहाँ भेज कर आपका अता-पता मालूम करें। आप तो माँ को डाक्टर के यहाँ जाने का कहकर ही गये थे न ?"

"हाँ मैं डाक्टर को लेने ही गया था, पर खुद ही खो गया।"

शीला ने प्रश्नवाचक दृष्टि से रमेश की आँखों में झाँका फिर बोली—"कब तक खोये रहेंगे आप ? माँ के लिये भी आपकी कोई जिम्मेदारी है या नहीं ? आप का सारा भविष्य आप के सामने पड़ा है, उसके लिये क्या सोच रहे हैं, क्या कर रहे हैं आप ?"

रमेश खामोश ही रहा लेकिन उसकी आँखों में प्रश्न के उत्तर के अतिरिक्त अर्थपूर्ण अभिव्यक्ति के लक्षण विद्यमान थे। डाक्टर के यहाँ से उत्तेजनावस्था

में निकलकर रात को वह सड़कों पर ही घूमता रहा। उसके कदम सड़कों पर चलते रहे और एक भयंकर तूफान उसके दिमाग में चलता रहा। सामाजिक-न्याय, गरीबी हटाओ, आत्मनिर्भरता बढ़ाओ, राष्ट्रीय चरित्र का निर्माण करो, राष्ट्रीय एकता को बढ़ावा दो आदि बड़े-बड़े नारों के नीचे उसे गन्दी नालियाँ बहती नज़र आई। बड़ी-बड़ी बातों के बड़े-बड़े चिरागों के तले उसे छोटी-छोटी हरकतों और काले कारनामों का अन्धेरा ही दिखाई दिया। रात भर नींद नहीं ली, मस्तिष्क को आराम नहीं मिला; केवल उतना ही नहीं मस्तिष्क में उत्तेजना, कुण्ठा, आक्रोश व असन्तोष के बवंडर चलते रहे तो मन-मस्तिष्क स्वाभाविक रूप से बोझिल हो गया। इन सब के ऊपर माँ के इलाज न करा सकने की विवशता और उसकी बीमारी की चिन्ता!

दुखमना रमेश का चेहरा, जेठ की धूप में धरती पर पड़े, सूखे पत्ते की तरह सूख गया। शीला से उसका दुःख भी छिपा नहीं रहा। वह जल्दी-जल्दी चाय बनाने में जुट गई। रमेश बाहर की ओर चलते हुए बोला—"मैं माँ को बुला लाता हूँ।"

"ठहरिये।"

रमेश ठहर गया।

"बस एक मिनट! चाय ऊपर रख दी है।"

"चाय! मगर दूध तो! .... रमेश अटकने लगा।

"दूध आ गया है। आप हर वक्त चिन्ता में उलझे रहते हैं। भला दूध की चिन्ता आपको करने की क्या ज़रूरत है। मैं चाय बना रही हूँ, इसकी चिन्ता मैं करूँगी।"

रमेश स्टूल पर बैठ गया। दोनों हाथों की उंगलियाँ आपस में फँसाकर फिर बुदबुदाने लगा—"वह सब तो ठीक है.....मगर........।"

शीला ने फिर बात काट दी—"मगर क्या? दूध कहाँ से आया, कौन लाया? यही न? मैं लाई हूँ। सुबह-सुबह पिताजी घूमने जा रहे थे तब माँ दरवाज़े पर खड़ी थीं, आपका इन्तज़ार करते हुए। पिताजी ने घर आकर मुझे सब कुछ बताया। बस, मैं यहाँ आ गई। अब आप चाय पीजिये।"

शीला फिर रसोई में चली गई। चन्द मिनट बाद वह चाय लेकर आई और रमेश की तरफ कप-प्लेट बढ़ाती हुई बोली—"लीजिये।"

रमेश ने सकुचाते हुए कप थाम लिया और बोला—"तुम और पिताजी कितनी तकलीफ उठा रहे हैं हमारे लिये।"

"हाँ।" मुस्कराकर शीला ने कहा।

"कौन किसके लिए भला इतनी तकलीफ उठाता है।"

"हाँ, कोई नहीं उठाता।" उसी तरह मुस्करा कर वह बोली।

"अरे तुम भी तो पियो चाय।" हड़बड़ा कर उसने कहा।

"आपको कई बार तो बताया है कि मैं चाय नहीं पीती हूँ।"

जैसे भूला हुआ कुछ याद आ गया हो। इसी भाव से रमेश ने कहा—

"हाँ-हाँ! बार-बार भूल जाता हूँ।"

"आप चिन्ता ज्यादा करते है न, इसीलिये आपकी याद कमजोर हो गई है।"

रमेश चाय की चुस्कियाँ लेने लगा। एक लम्बी चुस्की लेकर उसने कहा—"किसे अच्छा लगता है चिन्ता करना, और यह भी कहाँ पता लगता है कि जो कुछ कर रहे हैं, वह चिन्ता ही है। सिर पर आ पड़े, फिर कुछ सोचना तो पड़ता ही है।"

"सोचने और चिन्ता करने से बात बनती भी नहीं।"

"बात बनी रहे, इसके लिये कौन चिन्ता करता है, मैं तो दुखी इसलिये हूँ कि बात बिगड़ी हुई क्यों है। खैर छोड़ो। एक बात बताओ।"

"कहिये?"

"हमारे घर की हालत तो तुम से छिपी हुई नहीं है।"

"आगे कहिये।"

"इतने पर भी तुम्हारे पिताजी ने माँ से मेरी तुम्हारी शादी की बात पक्की कर दी है।

"तो!"

"आगे कैसे चलेगा।"

में निकलकर रात को वह सड़कों पर ही घूमता रहा। उसके कदम सड़कों पर चलते रहे और एक भयंकर तूफान उसके दिमाग में चलता रहा। सामाजिक-न्याय, गरीबी हटाओ, आत्मनिर्भरता बढ़ाओ, राष्ट्रीय चरित्र का निर्माण करो, राष्ट्रीय एकता को बढ़ावा दो आदि बड़े-बड़े नारों के नीचे उसे गन्दी नालियाँ बहती नज़र आईं। बड़ी-बड़ी बातों के बड़े-बड़े चिरागों के तले उसे छोटी-छोटी हरकतों और काले कारनामों का अन्धेरा ही दिखाई दिया। रात भर नींद नहीं ली, मस्तिष्क को आराम नहीं मिला; केवल इतना ही नहीं मस्तिष्क में उत्तेजना, कुण्ठा, आक्रोश व असन्तोष के बवंडर चलते रहे तो मन-मस्तिष्क स्वाभाविक रूप से बोझिल हो गया। इन सब के ऊपर माँ के इलाज न करा सकने की विवशता और उसकी बीमारी की चिन्ता!

दुखमना रमेश का चेहरा, जेठ की धूप में धरती पर पड़े, सूखे पत्ते की तरह सूख गया। शीला से उसका दुःख भी छिपा नहीं रहा। वह जल्दी-जल्दी चाय बनाने में जुट गई। रमेश बाहर की ओर चलते हुए बोला—"मैं माँ को बुला लाता हूँ।"

"ठहरिये।"

रमेश ठहर गया।

"बस एक मिनट! चाय ऊपर रख दी है।"

"चाय! मगर दूध तो! .... रमेश अटकने लगा।

"दूध आ गया है। आप हर वक्त चिन्ता में उलझे रहते हैं। भला दूध की चिन्ता आपको करने की क्या ज़रूरत है। मैं चाय बना रही हूँ, इसकी चिन्ता मैं करूँगी।"

रमेश स्टूल पर बैठ गया। दोनों हाथों की उंगलियाँ आपस में फँसाकर फिर बुदबुदाने लगा—"वह सब तो ठीक है.....मगर........।"

शीला ने फिर बात काट दी—"मगर क्या? दूध कहाँ से आया, कौन लाया? यही न? मैं लाई हूँ। सुबह-सुबह पिताजी घूमने जा रहे थे तब माँ दरवाज़े पर खड़ी थीं, आपका इन्तज़ार करते हुए। पिताजी ने घर आकर मुझे सब कुछ बताया। बस, मैं यहाँ आ गई। अब आप चाय पीजिये।"

शीला फिर रसोई में चली गई। चन्द मिनट बाद वह चाय लेकर आई और रमेश की तरफ कप-प्लेट बढ़ाती हुई बोली—"लीजिये।"

रमेश ने सकुचाते हुए कप थाम लिया और बोला—"तुम और पिताजी कितनी तकलीफ उठा रहे हैं हमारे लिये।"

"हाँ।" मुस्कराकर शीला ने कहा।

"कौन किसके लिए भला इतनी तकलीफ उठाता है।"

"हाँ, कोई नहीं उठाता।" उसी तरह मुस्करा कर वह बोली।

"अरे तुम भी तो पियो चाय।" हड़बड़ा कर उसने कहा।

"आपको कई बार तो बताया है कि मैं चाय नहीं पीती हूँ।"

जैसे भूला हुआ कुछ याद आ गया हो। इसी भाव से रमेश ने कहा—

"हाँ-हाँ! बार-बार भूल जाता हूँ।"

"आप चिन्ता ज्यादा करते हैं न, इसीलिये आपकी याद कमज़ोर हो गई है।"

रमेश चाय की चुस्कियाँ लेने लगा। एक लम्बी चुस्की लेकर उसने कहा—"किसे अच्छा लगता है चिन्ता करना, और यह भी कहाँ पता लगता है कि जो कुछ कर रहे हैं, वह चिन्ता ही है। सिर पर आ पड़े, फिर कुछ सोचना तो पड़ता ही है।"

"सोचने और चिन्ता करने से बात बनती भी नहीं।"

"बात बनी रहे, इसके लिये कौन चिन्ता करता है, मैं तो दुखी इसलिये हूँ कि बात बिगड़ी हुई क्यों है। खैर छोड़ो। एक बात बताओ।"

"कहिये ?"

"हमारे घर की हालत तो तुम से छिपी हुई नही है।"

"आगे कहिये।"

"इतने पर भी तुम्हारे पिताजी ने माँ से मेरी तुम्हारी शादी की बात पक्की कर दी है।

"तो!"

"आगे कैसे चलेगा।"

"बड़ों ने जो सोचा है और तय किया है, उसमें दखल देना आपको क्या अच्छा लगता है।"

रमेश अब तक चाय पी चुका था। कप-प्लेट एक तरफ रखकर उसने कहा—"मैं क्या कहना चाह रहा हूँ, मेरी बात तो समझो।"

"मैं समझ गई।"

"क्या ?"

"आप चाहते हैं कि मैं भी आपकी तरह चिन्ता करने की आदत में पड़ जाऊँ।"

रमेश मीठी झुँझलाहट से बिखर कर बोला—"उफ़! कोई समझना ही नहीं चाहता। सुनो शीला, मैं यह कहना चाहता हूँ कि क्या इस गरीबी, लाचारी और बेबसी में तुम मेरे साथ रह सकोगी ?"

"पिताजी को मंजूर है, तो मुझे उसमें क्या बोलना है।"

"अगर बड़े कहीं गलती पर हों, और उस गलती से छोटों का भविष्य बिगड़ता हो तो क्या आवाज़ नहीं उठानी चाहिये ?"

शीला ने मुस्कराकर कहा—"आप पिताजी के खिलाफ मुझे बगावत करने के लिये भड़का रहे हैं।"

शीला के निरन्तर मुस्कराते रहने और विषय को गम्भीरता से न लेने पर रमेश गम्भीर होकर कहने लगा—"शीला, बात मजाक की नहीं, गहराई से सोचने की है।"

शीला तो उसी अन्दाज में सरलता से बोली—"माँ और पिताजी आपसे ज्यादा गहराई में जाकर सोच आये होंगे। ऐसा मेरा ख्याल है।"

रमेश उसकी हाजिर-जवाबी और सरलता से तंग आकर बोला—"बड़ों की बात छोड़ो, मैं सिर्फ तुम से एक बात पूछता हूँ।"

"कहिये।"

"शादी का खर्चा कहाँ से आयेगा। माँ का इलाज करा सकने की भी मेरी हिम्मत नहीं है, फिर शादी कैसे होगी।"

शीला भी तंग होकर और झुंझलाकर बोली—"मुझ से यह सब क्यों पूछते हैं आप! मेरे चाहने या कहने से तो कुछ भी नहीं हुआ है। इन सब बातों के लिये आप पिताजी से पूछताछ क्यों नहीं कर लेते।"

रमेश फिर निरुत्तर हो गया। शीला अब तक खड़ी-खड़ी बात कर रही थी। वह भी स्टूल से उठ खड़ा हुआ और उसके करीब आकर, उसकी आँखों में आँखें गाड़ कर लोला—"शादी अगर जैसे-तैसे हो भी गई तो, चाय के लिए दूध कहीं से लाया करोगी?"

शीला उसी सौम्य मुस्कराहट के साथ कहने लगी—"देखो, क्या होता है। हो सका तो पिताजी से मैं कहूँगी कि दहेज में कोई गाय भैंस साथ में दे दें।"

पिछले कई घंटों का दुःख भूलकर रमेश बेबाक हँस पड़ा। शीला को भी हँसी आ गई। वह इतना पास आ गया कि अपनी बात कहने के लिये उसने शीला के कंधे पर हाथ रखते-रखते कुछ भूल-सुधार करने के अभिनय के साथ हाथ पीछे हटाते हुए कहा—"शीला, अब बात सिर्फ मेरे तुम्हारे बीच है। तुम पढ़ी-लिखी लड़की हो। इस साल बी० ए० पास भी कर लोगी। सच बताओ, क्या तुम्हारे दिल में यह ख्याल नहीं आता कि इस उजड़े, निर्धन और लूटे-लुटाये घर में आकर तुम खुश नहीं रह सकोगी।"

"आता तो है।"

"फिर?"

"आकर फिर वापिस चला जाता है।"

"फिर वही मज़ाक और टालने की बात!"

"आपने जो पूछा, मैंने ईमानदारी से जवाब दे दिया।"

"अच्छा तो बताओ यह ख्याल वापिस क्यों चला जाता है।"

"आप पढ़े-लिखे हैं, बी० ए० पास कर चुके हैं, ज़रा सी बात भी नहीं समझते क्या?"

"बी० ए० में नारी-शास्त्र तो मेरा विषय नहीं था।"

"पर चिन्ता-शास्त्र भी तो आपका विषय नहीं था।"

"बोलने के लिये रास्ता ही नहीं देती हो। तुम्हारी घुमावदार बातों में मेरी बात तो खो ही जाती है।"

शीला ने आँचल संभालते हुए कहा—"देखिये श्रीमान जी, आप जिन फालतू बातों में उलझे रहते हैं, मैं उन बातों में नहीं उलझती। आप नारी के सम्बन्ध को तर्क, स्वार्थ और दुनियादारी की तुला पर तोलते हैं, जबकि भारतीय नारी त्याग, समर्पण और विसर्जन में विश्वास करती है। मुझे आश्चर्य है कि जिस लड़की के साथ आपकी शादी होने वाली है, आप उसके विचारों से अपरिचित हैं। दोनों में से एक ही बात होती है, या तो माँ-बाप ने जो तय किया, उस पर विश्वास किया जाना चाहिये, या फिर खुद जाँच परख करके अपनी तसल्ली करनी चाहिये। आपने तो दोनों में से कुछ भी नहीं किया।"

शीला का लम्बा वक्तव्य, निर्भीक वाणी और स्पष्ट कथन सुनकर रमेश तनिक हैरान हुआ। बचपन से देखते, मिलते और बातें करते आये इस लड़की का व्यक्तित्व आरम्भ से ही प्रभावशाली रहा था। युवावस्था तक आते-आते इसके बौद्धिक-स्तर में इतना उठाव देखकर रमेश को हैरानी तो हुई, साथ-साथ मानस को गुदगुदाने वाली एक अनव्यक्त खुशी भी हुई। शुद्ध, सात्विक और प्रेम भरी दृष्टि से शीला की तरफ देख कर वह बोला—"शीला !"

"कहिये।"

"मैं कहना कुछ और चाहता हूँ, तुम समझ कुछ और रही हो। मेरा मतलब है कि जीवन में जो नीति और सिद्धान्त मैं लेकर चला रहा हूँ और उनके परिणामस्वरूप जो कष्ट मुझे झेलने पड़ रहे हैं, वे ही कष्ट तुम्हें भी झेलने पड़ेंगे।"

"तो झेलूँगी।"

"सब कुछ जानते हुए भी ? सच्चाई को देखकर भी।"

"क्या बुरी सच्चाई है आपके बारे में ! सिर उठाने और गर्व करने जैसी

सच्चाई से आप जुड़े हुए हैं। कितने भाग्यशाली हैं आप, जिसे इतनी अच्छी माँ मिली, जो गरीबी का अभिशाप झेलकर भी ईमानदारी के आदर्श से विचलित होने में विश्वास नहीं करती। आपकी गरीबी, आपकी विवशता, आपके कष्ट, सभी का कारण आपकी ईमानदारी और आपका स्पष्ट व्यक्तित्व ही तो है। मुझे आप बार-बार सोचने के लिये क्या कहते हैं। आप शराबी, जुआरी होते और फिर गरीब होते तो मैं खुद सोच लेती। पिता जी के सोचने से भी ऊपर सोच लेती। पर, मेरी आँखें तो एक विराट सत्य देख रही हैं, मेरा मन एक अलौकिक आनन्द से भरपूर है। भगवान के लिए आज के बाद इस विषय को मत छेड़िये। अब जल्दी जाईये और माँ को देखिये कहाँ हैं।"

प्रथम कक्षा के आज्ञाकारी बालक की तरह रमेश चुपचाप बाहर चल दिया।

शीला मास्टर श्याम सुन्दर जी की इकलौती सन्तान थी। जब उसकी तरुणाई उसके जीवन के आँगन में उतरी तो माँ संसार के आँगन से चल दी। रमेश की माँ ने छाती से लगाया और माँ के अभाव की पूर्ति करने में लग गई। मास्टर जी को भी रमेश की माँ का बड़ा सहारा हुआ और जवान होती हुई इकलौती बेटी को उसके संरक्षण में देखकर उन्हें कुछ तसल्ली मिली।

५

अपने घर में अभाव हो तो पराये बच्चे को ईमानदारी से प्यार दे सकना असम्भव न सही, कठिन अवश्य है। लेकिन रमेश की माँ ने इस कठिनाई को अपने सरल, स्पष्ट और दृढ़ स्वभाव के कारण पार कर लिया। शीला को भरपूर स्नेह मिला और माँ को भरपूर सम्मान। शीला माँ को ताई कहकर पुकारा करती। एक दिन मास्टर जी ने प्यार से डाँटते हुए कहा—"देख री शीला, अपनी ताई को ज्यादा तंग मत किया कर, नहीं तो तेरी ताई जल्दी ही तेरे हाथ पीले करवा कर कहीं दूर भेज देगी।"

तब शीला ने ताई से लिपटते हुए कहा था—"मैं तो ताई को छोड़कर कहीं भी जाने वाली नहीं हूँ।"

इस पर माँ ने प्यार से उसके सिर पर हाथ फेरते हुए कहा था—"अरी तू जाने के लिये तैयार नहीं होगी तो मैं क्या तुझे जबरदस्ती भेजने दूँगी। रह जब तक तेरा जी चाहे। मास्टर भैया से ज्यादा अब तो तुझ पर मेरा हक है। सच बात तो यह है कि अब मैं भी नहीं चाहती कि तू मुझे छोड़कर कहीं जाये। इतने सालों से मैं तुझे सँभाल रही हूँ, अब इस बुढापे में तू भी तो मुझे सँभाल।"

माँ की अर्थपूर्ण बात सुनकर शीला ने तनिक हटकर माँ को एक अर्थपूर्ण और उल्लासपूर्ण दृष्टि से लजाकर देखा। माँ ने मुस्कराकर कहा—"अरी ऐसे क्या देख रही है! मेरे साथ नहीं रहेगी?"

"अभी भी तो साथ में हूँ न!" शीला ने अन्दर की बात बाहर निकालने की नीयत से कहा।"

"अरे नहीं रे शीलू! ऐसे नहीं, पंडितों को बुलवाकर मंतर-संतर पढ़वा कर, तुझे अपने घर में रखने के लिये पक्की कर लूँगी। बस फिर दोनों एक-दूसरे के साथ रहेंगी। "बोल, क्या कहती है; तो कल बुलवा लूँ मैं पंडित जी को?"

शीला उठ खड़ी हुई और अपने घर जाते हुए बोली—"ताई तुम से कट्टी!"

रमेश की माँ और मास्टर जी दोनों ही हँस पड़े थे। जब वह चली गई तो वहीं पड़ी एक कुर्सी पर बैठते हुए मास्टर जी ने कहा—"भाभी, आज मेरे मन की बात तुम्हारी जबान पर कैसे आ गई।"

"भैया, बात तो मेरे मन की है और मेरी जबान मेरे मन के बहुत नज-दीक है इसलिये जल्दी आ गई। तुम्हारे मन से शायद तुम्हारी जबान बहुत दूर होगी, इसीलिए मन की बात अब तक फासला तय नहीं कर पाई।"

जवाब में मास्टर जी ने हँसने की कोशिश में जबरदस्ती होंठ खोलकर दाँत बाहर निकाले और कहने लगे—"देखो भाभी मैं बहुत दिनों से सोच रहा

हूँ कि शीला को प्यार तुम दे सकी हो और आगे भी दे सकोगी, वैसा प्यार और किसी घर में नहीं मिलेगा। बिन माँ की बच्ची को तुमने छाती से लगाया, अब इसे और कहाँ भेजूँ। तुम्हारे पास रहेगी तो मेरी आँखें इसे देखती रहेंगी। यहां रहकर मेरा घर भी सूना नहीं होगा। रमेश बी० ए० कर लेगा तो नौकरी भी मिल जायेगी। भगवान की दया से तुम्हारे दुख दर्द दूर होंगे।"

माँ ने दृढ़ स्वर में कहा—"मास्टर भैया अच्छी तरह सोच लो। इस घर में आने से पहिले तक मैं उसे माँ का प्यार दूँगी, मगर घर में आने के बाद उसे कठोर अनुशासन में रहना होगा। मैंने बड़े बुरे दिन देखे हैं भैया, अपने बच्चे को भी कठोर अनुशासन के पंजे तले रखकर पाला है। गरीब की औलाद काबिल न हो, तो घर उजड़ जाता है। तुमने तो देखा ही है, कितने छोटे को छोड़कर चले गये थे वे।"

संघर्षों की मार से कठोर हुई मनस्थली से करुणा की धार निकली तो, मगर वहीं विलीन भी हो गई। मास्टर जी ने स्थिति सँभालते हुए कहा—"तुम बिल्कुल भी दुखी मत होओ भाभी! मुझे तुम पर पूरा-पूरा भरोसा है, पर तुम कहो तो कि शीला तुम्हारी हुई।"

"वह तो कभी की हो चुकी है।"

"रमेश भी राजी है न ?"

इस प्रश्न से माँ का मुख एकाएक कठोर हो गया। उन्होंने प्रश्नवाचक और तीक्ष्ण दृष्टि से मास्टर जी की ओर देखा। मास्टर जी को भी लगा कि कुछ गलत बात मुँह से निकल गई है। गलती सुधारने की कोशिश में उन्होंने कहा—"मेरा मतलब है रमेश को इसमें कोई एतराज़ तो नहीं ?" उसी कठोरता से माँ ने कहा—"वह होता कौन है एतराज करने वाला। माँ के सामने एतराज़ करे, मेरा बेटा ऐसा नहीं। बेटे का एतराज़ सुन सकूँ, ऐसी मैं माँ भी नहीं। माँ-बाप के सामने सिर उठाने वाली शिक्षा मैंने अपने लड़के को नहीं दी है।"

"ठीक है भाभी, शीला वैसे भी तुम्हारी ही थी, आज से तो बिल्कुल तुम्हारी हो गई।"

इस तरह शीला और रमेश की शादी तय कर दी गई थी। तब शीला इन्टर और रमेश बी० ए० की परीक्षा में बैठ रहे थे। आज उस बात को दो साल बीत रहे थे। अब शीला बी० ए० पास करने की तैयारियाँ कर रही है रमेश बी० ए० पास करके लगभग दो वर्षों से नौकरी की तलाश कर रहा है। उसने कई छोटी-मोटी नौकरियाँ कीं, लेकिन अब तक कहीं टिक नहीं सका। मां से मिला हुआ नेकी और ईमानदारी का सिद्धान्त उसके दिल-दिमाग में उतर कर उसका अमिट संस्कार और स्वभाव का मुख्य अंश बन गया था। नेकी और ईमानदारी का यह संस्कार नौकरी में यदा-कदा टकराव उत्पन्न करता ही रहा। इतना ही नहीं, अब तो उसकी ईमानदारी मास्टर जी के लिये भी चिन्ता का विषय बन गई।

शीला जब रमेश के घर से वापिस लौटी तो मास्टर जी चिन्तित मुद्रा में खाट पर बैठे हुए थे। उन्होंने पूछा—"ताई ने कुछ खाया ?"

"अभी तो सिर्फ दवा खाई है। खिचड़ी बनाकर रख आई हूँ, कहने लगीं कि बाद में खा लूँगी।"

"और रमेश ने ?"

"सिर्फ चाय पी है।"

"हूँ......ऊँ !" कहकर मास्टर जी फिर से चिन्ता के भँवर में जा फँसे।

"क्या बात है पिता जी ?" शीला ने पिता के चिन्तित चेहरे की ओर देखकर कहा।

एक लम्बी सांस खींचकर और बैठक बदलकर मास्टर जी ने कहा—"भारी गलती हो गई है, बेटी !"

"किससे पिताजी ?"

"मुझ से।"

शीला ने प्रश्नवाचक और आश्चर्यभरी दृष्टि से पिता की ओर देखा फिर

पास बैठकर कहने लगी—"क्या हो गया है पिताजी कैसी गलती, कुछ बताइये तो।"

मास्टर जी ने शीला के चेहरे का नाप-तोल लिया, फिर बोले—"तेरी शादी की बात तय करने में मैंने बहुत जल्दबाजी से काम लिया। सोचता हूँ अब भाभी से क्या कहकर इन्कार करूँ।"

सांप के छूने पर जैसे शरीर हिल उठता है, पिता की बात सुनकर शीला का मानस भी हिल उठा। उसके मानसिक तन्तुजाल में भंयकर कम्पन पैदा हो गया। लाज के वजन और पीड़ा की कसक से दबे स्वर में उसने पूछा—"तो अब आप इन्कार करना चाहते हैं?"

"हाँ।"

क्यों—अन्तर से तो निकला, किन्तु लाज के कठोर पहरेदारों ने उसे होठों के दरवाज़े से बाहर नहीं निकलने दिया। पर पिता की अनुभवी दृष्टि ने पुत्री की आँखों में पीड़ा के अक्षरों से लिखा हुआ क्यों पढ़ ही लिया। अपनी बात के शब्दों को दुलार के ठंडे पानी में भिगोकर उन्होंने कहा—"बात ऐसी है शीला, कि रमेश को बी० ए० पास किये हुए लगभग दो साल हो रहे हैं। यह कुछ हद तक सच है कि नौकरियाँ आसानी से नहीं मिलतीं और बेकारी काफी है, लेकिन यह भी सच है कि रमेश को कई नौकरियाँ मिलीं और वह छोड़-छोड़ कर चला आया। माना कि ईमानदारी पर चलना चाहिये, मगर और लोग भी तो नौकरियाँ कर ही रहे हैं। इस तरह छोड़-छोड़ कर आने से काम कैसे चलेगा।"

मास्टर जी ने अपनी बात की प्रतिक्रिया देखने के लिये शीला की आँखों में झाँका, लेकिन वहाँ शून्यता के अतिरिक्त और कुछ भी न था। अपने कथन की सहमति के चिह्न नहीं मिले तो विरोध का आभास भी नहीं हुआ। अपनी बात को और अधिक पुष्ट करते हुए उन्होंने कहा—"अब तुम्हीं बताओ, ऐसे घर में तुम्हें कैसे भेज दूँ जहाँ खाने-पीने का ढंग-ढोरा नहीं, रोटी-कपड़े का ठिकाना नहीं। देखा न तुमने आज? रमेश शर्म के मारे रात भर घर नहीं आया। जब खाने-पीने का ही रास्ता नहीं तो माँ का इलाज कहाँ से

करायेगा। ऐसे में देखती आँखों मक्खी कैसे निगल लूँ! जानकर तुम्हें कुएँ में कैसे धकेल दूँ!!"

शीला, पत्थर की शिला की तरह अब भी चुप थी, लेकिन भीतर भी चुप हो सो बात नहीं। भीतर भयंकर बवंडर चल रहा था, असहनीय चुभन हो रही थी। माचिस की जली हुई सींख से, जो न जाने कब और कहाँ से उसके हाथ में आ गई थी, मेज़ के ऊपर लकीरें बना रही थी। सिर इतना अधिक झुका हुआ था कि पिता की आंखें उसकी आंखों में कुछ भी पढ़ सकने में असमर्थ थीं।

अन्त में मास्टर जी ने बेटी की कोमल भावनाओं का कम और उसके भावी जीवन का अधिक विचार करते हुए कहा—"शीला, अब मुझे तेरे लिये दूसरा लड़का देखना ही पड़ेगा। रमेश का ख्याल दिल से निकाल दे बेटी। ऐसे सिद्धान्तों से कविता और किताबें तो बनती हैं, मगर जीवन नहीं बनता।"

इतना कहकर वे उठ खड़े हुए। शीला बैठी ही रही।

६

स्कूल जाने के लिये मास्टर जी आज वक्त से कुछ पहिले ही निकले। उनके कदम रमेश के घर की तरफ बढ़ते जा रहे थे। वे आज उसकी मां से साफ-साफ कह देना चाहते थे कि शीला की शादी रमेश के साथ नहीं हो सकेगी। वे सोचने लगे कि भाभी जी बीमार और परेशान हैं, ऐसे में ऐसी निराशाजनक बात करना कहाँ तक उचित होगा, लेकिन फिर सोचा कि दूसरों को खुश करने के लिये अपनों के भविष्य को कब तक अँधेरे में रक्खूँ।

मनुष्य की मानस धरती पर स्वार्थ के पौधों के फूल अनुकूल पवन चलने पर सुगन्ध देने लगते हैं, लेकिन पवन प्रतिकूल हो जाये तो इन्हीं पौधों के

फूलों से दुर्गन्ध भी आने लगती है। जब तक मास्टर जी का स्वार्थ रमेश की मां से अटका था, तब तक उसकी स्वस्थ-अवस्था में भी यह विचार रहा कि कहीं गलत बात मुंह से न निकल जाये, लेकिन आज उसकी घोर विपत्ति और अस्वस्थ स्थिति में उन्हें इस बात की चिन्ता नहीं रही कि उस बेचारी के मानस पर दुखद निर्णय की सूचना की कैसी प्रतिक्रिया होगी। अपनी पुत्री को स्वयं उनके घर में देने का विचार रखने वाला व्यक्ति उनकी आर्थिक जर्जरता के कारण उनसे सम्बन्ध-विच्छेद करने की कठोर क्रिया के लिये तैयार हो गया था।

मनुष्य मीठा इसलिये नहीं बोलता कि उसके कंठ में कहीं शक्कर का भंडारा पड़ा है, वह मिठास तो उसके स्वार्थ की देन होती है। उसका स्वार्थ उसकी वाणी को मिठास देता है। वह कड़वा इसलिये नहीं बोलता कि कहीं उसके कंठ में कोई नीम का पेड़ अटका पड़ा है, वह कड़वाहट भी उसके स्वार्थ की उत्पत्ति है। उसका स्वार्थ ही उसकी वाणी को कड़वाहट देता है।

मास्टर जी मनुष्य हैं और आज उनका स्वार्थ उन्हें बाध्य कर रहा है कि वे अपनी वाणी को कठोर और कड़वा बना लें। रास्ते तय करते हुए उन्होंने यह भी तय कर लिया कि वे स्पष्ट शब्दों में सच्चाई सामने रख देंगे, आखिर दूसरे के हित की बात सोचते हुए अपना अहित कब तक करते रहें।

जब वे रमेश के घर पहुँचे तो रमेश काम की तलाश में मां को अकेला छोड़कर जा चुका था। भाभी को अकेले पाकर उन्हें तसल्ली हुई, कारण कि रमेश का सामना होने का खतरा टल गया था।

कैसी हो भाभी ?"

बिस्तर पर पड़ी रमेश की मां ने गर्दन घुमाकर देखा, फिर बैठने के लिये उठते हुए बोली—"आओ, मास्टर भैया।"

"सोई रहो आराम से।" कहकर वे एक कुर्सी पर बैठ गये।

मां सँभलकर बैठते हुए कहने लगी—"सोये-सोये भी आराम कहाँ है, भैया।"

"कुछ खाया पीया ?"

"मुंह को लगता ही नहीं, खाऊँ क्या !"

"न खाने से कमज़ोरी बढ़ेगी, कुछ तो खाना ही चाहिये।"

"खाई है थोड़ी-सी खिचड़ी; शीलू बेचारी लगी रही; बनाने के बाद ज़बरदस्ती अपने हाथ से खिला कर भी गई है। क्या बात है, आज स्कूल के लिये जल्दी निकल पड़े?"

"हाँ, सोचा तुम्हें देख लूँ, कोई काम-धाम हो।"

मां ने बैठे-बैठे करवट ली और खास बात करने के अन्दाज़ में बोली—"अच्छा किया भैया जो तुम आ गये। मैं रात से ही एक खास बात तुमसे कहने के लिये परेशान हूँ। अगर तुम बात की गहराई में जाकर उसे समझो और बुरा न मानो तो कहूँ?"

"कहो न भाभी! जो कुछ कहोगी भले के लिये ही कहोगी, बुरा मैं क्यों मानूंगा।"

"तो भैया, शीलू की बात कहीं और पक्की करके जल्दी से उसकी शादी कर दो।"

अन्धे को चाहने पर जब दो आँखें मिल जायें तो बिना चीखे चिल्लाये उसके भीतर खुशी का जो पारावार उमड़ता है, वैसी ही स्थिति मास्टर जी की भी हो गई। फिर भी पैंतरा बदलकर उन्होंने पूछा—"ऐसा क्यों!"

"मुझ से पूछते हो, सब कुछ तो तुम्हारे सामने है। घर की हालत क्या छिपी हुई है तुम से! दो साल हो जायेंगे रमेश कहीं ढंग की नौकरी नहीं कर सका है। हम मां-बेटे जैसे-तैसे अपने दिनों को धक्का दे रहे हैं, ऐसे में दूसरे की बेटी को घर में लाकर क्या पाप सिर पर चढ़ायें?"

एक बार तो मास्टर जी को ऐसा लगा कि शीला से बात करते हुए कहीं उनकी बात सुन ली गई है और यहाँ आकर सब कुछ बता दिया गया है; लेकिन रमेश की मां के विकाररहित चेहरे को देखकर उन्हें तसल्ली हुई कि ऐसा नहीं हुआ है। कुशल राजनीतिज्ञ की तरह उन्होंने विषय को मोड़ देते हुए कहा—"तुम्हारा बड़प्पन है कि शीलू के बारे में सोचती हो, मगर मैं रमेश के बारे में सोचता हूँ।"

माँ ने निर्विकार मुस्कराहट बिखेरते हुए कहा—"रमेश के बारे में क्या सोचना है; वह तो लड़का है, आज नहीं तो दो साल बाद शादी हो जायेगी,

मगर शीलू के लिये अब ज्यादा ठहरना ठीक नहीं, लड़की सयानी हो गई है।"

"मैं शादी की नहीं, रोजगार और काम-धन्धे की बात कर रहा हूँ।"

खांसी पर काबू पाते हुए मां बोली—"कर रहा है बेचारा कोशिश; भाग दौड़ करता है, लोगों से मिलता है और क्या करे।"

"नहीं भाभी, यह सब नहीं करें तो भी चलेगा, मगर एक बात आज के जमाने में नहीं चलती।"

"वह क्या ?"

"जिद्द !"

"कैसी जिद्द ?"

"ईमानदारी और सिद्धान्त के लिये अड़ना जिद्द ही तो है।"

रमेश की मां मुस्करा पड़ी और बोली—"मास्टर भैया, स्कूल में बच्चों को पढ़ाते हुए बीस-पच्चीस साल तो हो गये होंगे।"

"हाँ बाईस साल हो गये हैं।"

"तो बाईस साल से बच्चों को सच बोलना और ईमानदार बने रहने का पाठ पढ़ाते-पढ़ाते आज मुझ बूढ़ी को बेईमान बनने की बात कैसे पढ़ा रहे हो !"

मास्टर जी के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को जैसे बिजली के किसी झटके ने झकझोर दिया। शिक्षा की ईंट और आदर्श के चूने से बनी बाईस साल पुरानी इमारत सच्चाई के एक धक्के से हिल उठी। उन्हें लगा कि अन्धकार के घेरे में घिर गया है। पर रास्ता निकालने के लिये उन्होंने अन्धी छलांग लगाते हुए कहा—"भाभी, स्कूल में बच्चों को पढ़ाना अलग बात है और जिन्दगी में, जिन्दा रहने के लिये, वक्त से कदम मिलाना कुछ अलग बात है। चाहकर कौन बेईमान होता है, मगर ईमानदारी के खातिर अपनी बलि चढ़ा देना भी समझदारी तो नहीं।"

"भैया, बुरा न मानो तो एक बात कहूँ ?"

"कहो।"

"बुरा लगने जैसी बात तो है, पर है सच, मन को लग जाये तो फूहड़ समझकर माफ कर देना।"

"तुम कहो तो।"

"आजकल स्कूलों के बच्चे जो बिगड़े हुए हैं, दरअसल उनका बिगड़ने में इतना दोष नहीं। ये मास्टर लोग ही इन्हें डबल पढ़ाई पढ़ा रहे हैं।"

"वह कैसे ?"

"तुमने अभी बताया तो है कि बच्चों को पढ़ाना अलग बात है और जीवन में कदम मिलाना अलग। मतलब यह हुआ कि सच बोलना और ईमानदार बने रहने की बात सिर्फ इसीलिये पढ़ाई जाती है कि वह सब किताब में लिखा हुआ है और उस लिखे हुए में से परीक्षा में पूछा जा सकेगा, वैसे सच बोलना और ईमानदार बनना यदि सचमुच न हो सके तो कोई बात नहीं। किताब के काले अक्षर बच्चों को पढ़ाना है, काले अक्षरों के नीचे दबी सफेद सच्चाई को जीवन में उतारना मास्टरों का काम नहीं। बस इन्हीं बातों ने मुल्क का सत्यानाश किया है।"

मास्टर जी के भीतर बैठा हुआ ईमानदार इन्सान सच्ची बात सुनकर लज्जित हुआ, मगर शीघ्र ही बाहर के बेईमान ने पलटा खाया और वे बोले—"भाभी, तुम कैसी बातें करती हो। स्कूल में पढ़ी हुई किताबों पर चलकर अगर हर बच्चा नेकी और ईमानदारी से काम करने लगे तो भूखे मरने की नौबत आ जाये।"

"जैसी कि रमेश की नौबत आई है।"

"सच तो सामने ही है।"

"खैर भैया, मुझे नहीं मालूम कि स्कूल में मास्टरों ने रमेश को क्या पढ़ाया है, पर मैंने उसे नेकी और ईमानदारी का पाठ तोते की तरह याद करा दिया है।"

"उसके साथ दुश्मनी कर गई हो तुम।"

"ऐसी प्यारी दुश्मनी बहुत कम मां कर पाती हैं।"

"क्योंकि ज्यादातर माँएँ आगे आने वाली सच्चाई जानती हैं।"

"ऐसी मांएँ सच्चाई नहीं जानतीं भैया, झूठ की लाश पर पड़े रेशमीन कफन को ही वे सच्चाई समझ बैठती हैं।"

दोनों के विवाद में उत्तेजना की गर्मी आने लगी। बात और आगे बढ़ती,

लेकिन पोस्टमैन चिट्ठी देकर गया तो बातों का सिलसिला बदल गया। मास्टर जी लिफाफा उलट-पलट कर देख रहे थे। मां ने पूछ लिया—"कहाँ से आया है भैया ?"

"अमृतकौर हास्पिटल से।"

"खोलकर देखो तो क्या है।"

मास्टर जी ने लिफाफा खोलकर पत्र निकाला और पढ़ने लगा। पढ़ते-पढ़ते उनकी आंखों में खुशी छलकने लगी।

"क्या है ?" मां ने पूछा।

"लड्डू खिलाओ, भाभी।"

"कहो तो।"

"रमेश को नौकरी मिल गई।"

"कहाँ ?" नियन्त्रित खुशी से भर कर पूछा मां ने।

"अमृतकौर हास्पिटल में।"

"हाँ हाँ ! उसने दरख्वास्त तो दे रक्खी थी। उसी का जवाब होगा। और क्या लिखा है भैया ?"

"बस आनन्द ही आनन्द है। स्टोरकीपर की जगह है, ढाई सौ रुपये तनख्वाह है, रहने के लिये क्वाटर भी मिलेगा।"

"सच !" माँ ऐसे खुश हुई जैसे कभी बीमार थी ही नहीं।

"सोलह आने सच। सुपरिन्टेन्डेन्ट का नियुक्ति-पत्र सामने है।"

"चलो भगवान ने सुन ली।"

"भगवान ने तो सुन ली, पर भाभी; तुम भी मेरी एक बात सुन लो।"

"क्या?"

"रमेश को समझाओ जरा डट कर काम करे। दुनिया में और भी लोग हैं जो नौकरियाँ करते हैं। वे सभी बेईमान नहीं हैं।"

इतना कहकर उन्होंने हाथ में बँधी घड़ी की तरफ़ देखा। लिफाफा और पत्र मेज़ पर रखते हुए बोले—"अच्छा, टाईम हो गया है, स्कूल पहुँचना है। मैं खुद रमेश से शाम को मिल लूंगा। इस वक्त मैं चलता हूँ।"

और मास्टर जी चले गए। रमेश की माँ ने हाथ बढ़ाकर मेज पर रक्खा हुआ नियुक्ति-पत्र उठा लिया और उसे उलटने-पलटने लगी। उस ज़रा से कागज में ढाई सौ रुपये महावार तनख्वाह, रहने के लिये मुफ्त मकान और भविष्य की उज्ज्वलता का चित्र छिपा पड़ा था। माँ सोचने लगी कि इंसान को ज़िन्दा रखने वाली ऐसी बड़ी और सच्ची बातें इस ज़रा-से कागज़ में समा गई हैं, पर जीवन के सिद्धान्तों की छोटी-छोटी और सच्ची बातें चलते-फिरते पाँच-छः फुट के इंसान में क्यों नहीं समा सकतीं। माँ विचारों में खोई हुई थी कि शीला हाथों में किताबें थामें वहाँ आ पहुँची। मां ने नियुक्ति-पत्र और नौकरी की खुशी की बात कहने के लिए मुँह खोला ही था कि उसकी नज़र शीला के चेहरे पर गई। माँ ने सहम कर कुछ कहना चाहा तब तक तो शीला हाथ की किताबें एक ओर पटक कर माँ से लिपट गई और फफक-फफक कर रोने लगी।

"क्या हुआ है शीलू!" माँ ने कमर पर हाथ रखकर पूछा। मगर शीला सिर्फ रो रही थी। सिर पर प्यार से हाथ फेरते हुए माँ ने फिर पूछा—"अरी कुछ बोल तो, क्या हुआ?"

पर शीला और जोर से रो पड़ी। माँ सोचने लगी कि मास्टर भैया तो घर गये नहीं, सीधे स्कूल गये हैं। फिर शीला को कैसे पता चला कि मैं उसके कहीं और बात पक्की करने के लिए कह चुकी हूँ। उसी बात को लेकर यह इतना रो रही है। माँ ने उसका मुँह हाथ में लेकर कहा—"अरी पगली कुछ मुँह से तो बोल। बात क्या है।"

आँसुओं को पोंछते हुए शीला ने रोते-रोते कहा—"ताई, ऐसा नहीं होगा, ऐसा हुआ तो मैं मर जाऊँगी।"

कहकर शीला फिर फफक उठी।

"तू तो बावली है! कुछ बोलती नहीं और रोये जा रही है।" "नहीं ताई नहीं, ऐसा नही होगा।" फफकते हुए उसने माँ की गोद में मुँह छिपा लिया। माँ ने उसे दुलराया और कहने लगी—"पर मेरी बात तो सुन!"

शीला ने धीरे-धीरे सिर उठाया। आँचल से आँसू पोंछे और भयभीत हिरणी की तरह कातर दृष्टि से माँ की तरफ देखने लगी। माँ ने देखा कि

उनकी आँखें सूज कर लाल हो गई हैं और नथुने भी फूले पड़े हैं।

वह बोली—"हाँ, बता क्या बात है ?"

"मुझ से क्या पूछती हो।"

"देख शीनू, मैं जानकर तेरा दिल दुखाना नहीं चाहती, बेटी। तेरे मन की बात मैं समझती हूँ, मगर सच्चाई यह है कि तू इस घर में आकर सुखी नहीं रह सकेगी।"

"तो तुमने भी पिताजी की बात मान ली ?"

शीला की बात सुनकर माँ का चेहरा प्रश्नवाचक बन गया। उसकी बात में अर्थ खोजती हुई वह बोली—"मैंने तेरे पिताजी की बात नहीं मानी, तेरे पिताजी को अपनी बात मानने के लिये कहा है।"

प्रश्नवाचक चिन्ह माँ के चेहरे से हटकर अब शीला के चेहरे पर आ ठहरा। उसने कहा—"पिताजी ने ही तुमसे कहा न कि मेरे लिए कहीं दूसरी..."

शीला की शालीनता ने अपना सारा भार उसकी वाणी पर पटक दिया। माँ ने स्थिति को कुछ-कुछ समझते हुए कहा—"नहीं, नहीं, भैया ने मुझे कुछ नहीं कहा। मैंने ही उन्हें कहा है कि तेरी बात कहीं और पक्की कर दें।"

असन्तोष भरे स्वर में पूछा उसने—"तुमने कहा ?"

"हाँ।"

"क्यों ?"

"तेरे भले के लिये।"

"ताई अगर इसमें मेरी भलाई है तो मेरा भला मत सोच। सोचेगी तो भला नहीं होगा और बुरा हो जायेगा। मैं जी नहीं सकूँगी। कहते-कहते उसकी आँखों में फिर से पानी उमड़ आया।

"शीनू समझने की कोशिश क्यों नहीं करती। शादी-विवाह की बात बच्चों का खेल नहीं है। तू अभी बच्ची है, नहीं समझेगी।"

"हाँ नहीं है, बच्चों के मन और भावनाओं से खेलना बड़ों के लिए तो बच्चों का खेल ही है। बात किसने उठाई थी ? क्यों उठाई थी ? यहाँ इसी

जगह, इसी खाट पर तुमने क्या कहा था ताई ! याद है कुछ? मुझे याद है मैंने क्या कहा था। मैंने कहा था कि मेरी तुमसे कट्टी। देख ताई, तब कट्टी नहीं हुई थी, पर इस वार ज़ोर से कट्टी हो जायेगी। मैं तुझे छोड़कर कहीं भी नहीं जाऊँगी। हरगिज़-हरगिज नहीं जाऊँगी।"

माँ ने हँसते हुए उसे अपनी वाहों में भर लिया और वोली—"वड़ी भोली है री तू, अब कैसे समझाऊँ तुझे।"

"जरूरत ही क्या है समझाने की।"

"जरूरत है शीलू।"

"पर ताई मैं समझने वाली नहीं हूँ। मैं तो समझी थी कि पिताजी ने आकर तुमसे कुछ कहा होगा। घर से वे कुछ कहने की तैयारी करके निकले थे। पर अब पता चला कि कहना-सुनना सब तुम्हीं ने किया है।"

माँ की आँखों के सामने मास्टर भैया का चेहरा उभर आया। वह विचारों में खो गई। शीला ने कहा—"क्या सोच रही हो ताई?"

"कुछ नहीं, जा तू कॉलेज जा।"

"क्या करूँगी आज कॉलेज जाकर। वहाँ क्या मेरा मन पढ़ाई में लगने वाला है। आज मैं नहीं जाऊँगी।"

"तो फिर क्या घर वापिस जायेगी?"

"क्यों जाऊँ घर?"

"फिर?"

"यहीं बैठूँगी तुम्हारे पास।"

माँ ने दुलार से, एक हल्की चपत उसके गाल पर मारते हुए कहा—"वावली कहीं की!"

७

रात भर सड़कों पर भटकने के वाद वोझिल मन-मस्तिष्क लेकर जब रमेश घर पहुँचा तो भीतर घुसते हुए सकुचा रहा था कि माँ को क्या मुँह

दिखाऊँगा, मगर शीला को वहाँ देख कर उसका संकोच दूसरी ओर मुड़ गया था। शीला से बातें करने के बाद वह माँ को ढूंढने ज्यों ही घर के बाहर निकला, तो सामने से लड़खड़ाती हालत में माँ उसी ओर बढ़ती नज़र आई। अपनी माँ को ऐसी लाचारी और मजबूरी की हालत में देख कर उसका मन रो उठा। माँ का हाथ थाम कर घर में लाया और उसे खाट पर बैठा कर बोला—"मुझे माफ कर दे माँ, मैं तेरा बड़ा नालायक बेटा हूँ।" इतना कहकर वह माँ से लिपट कर रोने लगा। रसोई से शीला भी यह सब देख रही थी।

माँ ने कहा—"अरे बावले भाई, तू नालायक बेटा है या लायक बेटा, इसका फैसला माँ करेगी, तू कैसे करेगा। हाँ, तू यह फैसला कर कि ईमानदारी का कठोर और रूखा पाठ पढ़ाने वाली तेरी माँ, जिसने तेरा सुख-चैन छीन लिया है, वह नालायक है या लायक।"

आँसुओं का वेग कम हुआ तो वह कहने लगा—"माँ आज मैं कहीं-न-कहीं, कुछ-न-कुछ काम ढूंढ निकालूंगा। तू आराम कर शीला तेरे पास है। मैं आज जल्दी ही अच्छी खबर लेकर लौटूंगा।"

इतना कहकर रमेश उठ खड़ा हुआ फिर शीला से बोला—"शीला, माँ को संभालना मैं जल्दी आऊँगा।"

माँ बोली—"उसे कॉलेज नहीं जाना है क्या ?"

पर वह तो माँ की बात सुनी-अनसुनी करके तेज़ी से घर के बाहर निकल गया। गली से निकल कर मुख्य सड़क पर आया। वहाँ चौराहे पर खड़ा होकर सोचने लगा कि कहाँ जाये। फिर उसके कदम हाईकोर्ट की तरफ जाने वाली सड़क की ओर बढ़ गये। बढ़ते-बढ़ते वह एक स्थान की तरफ रुक गया। एक बहुत पुराने बंगले जैसी इमारत के बड़े से दरवाज़े पर कई ट्रक खड़े थे। बंगले का अहाता काफी लम्बाई-चौड़ाई में फैला हुआ था। अहाते में भवन-निर्माण का सामान फैला पड़ा था। पत्थर, लोहे की सलाखें, चूने की ढेरियाँ, मिट्टी, कंकर आदि। बंगले के दरवाजे पर एक बड़े-से बोर्ड पर लिखा हुआ था—न्यू इंडिया बिल्डिंग कन्सट्रक्शन। रमेश उसी ओर बढ़ गया। अहाते के भीतर बहुत से मज़दूर काम कर रहे थे। मज़दूरों का एक प्रमुख उन्हें

डाँट-डपट कर जल्दी हाथ चलाने की हिदायत कर रहा था। रमेश गेट के भीतर घुस कर उस डाँट-डपट करने वाले मजदूरों के मुखिया के पास जा पहुँचा और पूछा—"यहाँ का सेठ कौन है ?"

मुखिया ने उसे नीचे से ऊपर तक देखा फिर सवाल-पर-सवाल किया—"क्या काम है ?"

"कोई काम है क्या, इतना पूछने का काम है।"

"बनवारी सेठ से मिलो।"

"कहाँ हैं वे ?"

मुखिया ने उंगली के इशारे से दूर खड़े बगल में रजिस्टर दबाये एक अधेड़ उम्र वाले आदमी की तरफ इशारा करके कहा—"वे खड़े चश्मा लगाये लम्बे से।"

"अच्छा भैया, बहुत मेहरबानी।" कहकर रमेश बनवारी सेठ नाम के आदमी की तरफ गया।

बनवारी सेठ एक और मजदूर के साथ खड़ा हुआ, आज आये और गये माल का हिसाब-किताब पूछ रहा था। रमेश ने पास पहुँच कर कहा—"नमस्ते जी।"

"नमस्ते।" गर्दन झुकाकर चश्मे के ऊपर से झाँककर वह बोला।

"बनवारी जी आप ही हैं ?"

"बिल्कुल मैं ही हूँ।"

"आपके यहाँ कोई जगह खाली है, मेरा मतलब मेरे लिए कोई नौकरी है ?"

बनवारी सेठ ने भी नजरों से उसका जायजा लेना शुरू किया। ऊपर से नीचे तक देख लेने के बाद पूछा—"क्या काम कर सकते हो ?"

"कुछ भी हिसाब-किताब का, ऑफिस का।"

"पढ़े लिखे हो ?"

"जी हाँ।"

"कहाँ तक ?"

"बी० ए० पास हूँ।"

बनवारी सेठ बी० ए० पास बेकार नौजवान को अपने सामने ऐसी दयनीय और विवशता की स्थिति में देखकर तनिक चौंका। फिर पूछा "हिसाब-किताब अच्छी तरह कर सकोगे?"

"जी हाँ।"

"ईंट, चूने, सिमेंट, पत्थरों का हिसाब रख सकोगे?"

"जी कर लूँगा।"

"रोज माल आता है और जाता है, सब का हिसाब संभालना पड़ेगा।"

"जी संभाल लूँगा।"

"तो फिर आओ मैं तुम्हें बड़े सेठ गुप्ताजी से मिला देता हूँ। तुम भी भाग्यशाली हो और मैं भी। कल से हमारा एक सुपरवाइजर चला गया है। उसका काम मुझे संभालना पड़ रहा है। आओ, चले आओ मेरे साथ।"

बनवारी सेठ मजदूर को वहीं छोड़कर बंगले के एक कोने की तरफ बढ़ते हुए बोला—दीना, तू सिमेन्ट की बोरियाँ गिन ले मैं आया अभी।"

रमेश भी बनवारी सेठ के पीछे-पीछे चल दिया। दोनों बँगले के एक आलीशान कमरे के बाहर जा पहुँचे। बाहर बैंच पर चपरासी बैठा था। कमरा जो वास्तव में बड़े सेठ का ऑफिस था, बाहर से आधुनिक ढंग से सजा हुआ और लिपा-पुता हुआ था। दरवाजे पर खूबसूरत नामपट्टिका पर लिखा हुआ था—मुनिश कुमार गुप्ता!

ऑफिस के भीतर से कुछ गरमागरम आवाजें आ रही थीं। ऐसा लगता था कि सेठ जी किसी को फटकार रहे हैं। बनवारी सेठ ने चपरासी को पूछा—"कौन है अन्दर?"

"कवि बावरा जी हैं और करमचन्द भी है।"

"सेठ जी गुस्सा किस पर कर रहे हैं।"

"करमचन्द पर।"

"क्यों?"

"कल सेठ जी जब बाहर गये थे तो उसने सेठ जी के गिलास में पानी पी लिया था।"

"फिर?"

"फिर क्या, किसी ने शिकायत कर दी, अब उससे जवाब पूछा जा रहा है। नौकर लोगों का गिलास अलग है, पानी का मटका भी अलग है तो सेठ जी के गिलास और मटके को छूने की क्या ज़रूरत थी।"

रमेश सब कुछ सुन रहा था। उसे बड़ा अजीब-सा लगा कि राष्ट्रीय एकता के ढोल बजाने वाले समाज में पानी का गिलास भी अगर एक दिन एक हो गया तो इतना बबाल!

तभी डपटने की एक और तीखी आवाज़ भीतर से आई। चपरासी सहम गया। बनवारी सेठ भी विचार करने लगा कि भीतर जाऊँ या न जाऊँ। इसी कशमकश में चन्द मिनट गुजर गये। अचानक दरवाजा खुला और करम चन्द ऑफिस से बाहर निकला। उसका मुँह उतरा हुआ था। बनवारी सेठ ने उससे पूछा—"क्या हो गया भाई?"

"क्या बताऊँ यार, जरा सी बात का बतंगड़ बन गया।"

"पर हुआ क्या?"

"अरे यार कल खाना खाने के बाद पानी पीने लगा तो गिलास मेज़ से गिर कर टूट गया। दूसरा गिलास था नहीं, मैं सेठ जी से गिलास माँगने ऑफिस में आया उस वक्त सेठ जी थे नहीं। मैंने गिलास से पानी पी लिया, बस उसी पर नाराज़ हो रहे हैं।"

बनवारी सेठ ने अपनी स्थिति को सुरक्षित करते हुए बेसुरे ढंग से कहा —"चलो जाने दो, जो हो गया उसे भूल जाओ।"

रमेश फिर चौंका। जो बात भीतर जाकर सेठ जी को कही जानी चाहिये, वह बात बाहर करम चन्द को कही जा रही है। उसे ये लोग और यह वातावरण दोनों ही अपने प्रतिकूल लगे।

करमचन्द जा चुका था। बनवारी सेठ दरवाज़ा खोल कर, रमेश को ठहरने का इशारा करके भीतर गया। दो-तीन मिनट बाद उसने दरवाज़ा खोलकर रमेश को भीतर बुलाया। रमेश ने भीतर प्रवेश किया।

ऑफिस आलीशान फर्नीचर से सजा हुआ था। बड़ी सुन्दर और आकर्षक मेज़ की मुख्य कुर्सी पर सेठ मुनीश कुमार गुप्ता बैठे थे और उनकी बगल में

एक कुर्सी पर कवि बावरा जी विराजमान थे। भीतर घुसते ही रमेश ने सेठ लगने वाले सेठ का अभिवादन किया—"नमस्ते जी।"

सेठ जी ने मोटी और भारी भरकम गर्दन पर टिके हुए मोटे और गोल-मटोल सिर को उपेक्षा-भाव से घुमाते हुए एक उड़ती नजर से उसे देखा और पूछा—"क्या काम करते हैं आप?"

रमेश को बड़ा गुस्सा आया, सोचा कह दे कि काम करता होता तो काम की तलाश में यहाँ क्यों आता, मगर मनोभाव को छिपाकर नम्रतापूर्वक उसने कहा—"जी फिलहाल तो कहीं काम नहीं कर रहा।"

"हूँ···ऊँ···क्या नाम है?"

"रमेश कुमार।"

"पूरा नाम क्या है भई!" सेठ जी ने तनिक कटु स्वर में पूछा।

"जी यही पूरा नाम है।"

"पर जांत-पांत तो कुछ होगी। शर्मा, वर्मा कुछ लिखते हो या नहीं?"

"जात ब्राह्मण है, पिताजी शर्मा लिखते थे, मैं नहीं लिखता।"

"लिखना चाहिये। नहीं लिखने से लगता है कि कोई छोटी-मोटी या चालू जात का आदमी है। अपना जाति गौरव तो होना चाहिये। जाति लगाने से बड़ा प्रभाव पड़ता है, खासकर नौकरी पाने में। तुम अगर अपने नाम के आगे शर्मा लिखकर किसी ऐसी जगह एप्लाई करोगे जहाँ का मालिक शर्मा हो, तो नौकरी जल्दी मिलने के चान्स बहुत रहते हैं। अपने जाति-भाई को सभी रखना चाहते हैं। खैर! बैठो, मैं ज़रा कविराज जी से बात कर लूँ, फिर तुम से बात करता हूँ।"

रमेश दायें पड़ी एक कुर्सी पर बैठ गया। बनवारी सेठ जी अब तक वहाँ खड़ा था, पूछा—"मैं जाऊँ सर?"

"हाँ जाओ, पर हमारे बाथरूम की मरम्मत का क्या किया?"

"मिस्त्री से कह दिया है, वह तैयार है।"

"तैयार है मतलब?"

"आप अभी घर जायेंगे तो साथ लेते जाइये।"

"मिस्त्री को मैं घर तक साथ कैसे ले जाऊँगा ?"

वनवारी सेठ ने डरते-डरते और अटकते-अटकते कहा—"आप अपने साथ कार के पीछे ………।"

सेठजी ने आँखें दिखाते हुए कहा—"दिमाग तो नहीं खराव हो गया तुम्हारा। पगला गये हो क्या! उस मज़दूर को मैं अपने साथ अपनी कार में बैठा कर घर का वाथरूम ठीक कराने के लिये ले जाऊँगा। कल करमचन्द ने वेहूदा हरकत की। आज तुम उससे भी वड़ी वेहूदा वात करने लगे। हुआ क्या है तुम लोगो को! जाओ भेज दो उसे घर पर। पैदल चलकर जायेगा, मिस्त्री है, कोई नवाव नहीं है कहीं का।"

फटकार खाकर वनवारी सेठ वाहर चला गया।

सेठजी ने कवि बावरा की तरफ मुखातिव होकर कहा—"हाँ तो आगे कहिये कविराज जी।"

रेशमीन कुरते पर लहराते कविराज के लम्मे-लम्वे वाल वास्तव में उनके कवि होने की ही घोषणा कर रहे थे। उन्होंने मुँह के पान को एक गाल से दूसरे गाल की तरफ लुढ़काते हुए कहा—"वस जी गुप्ता साहव, आप अगर इतना कुछ भी वोल देते हैं तो काफी हो जाता है। वैसे मेरा ख्याल है कि आप लिखकर ले जायें तो ज्यादा अच्छा होगा। और हाँ, वह वात आप मत भूलिये।"

"कौन-सी वात ?"

कविराज ने कनखियों से रमेश की तरफ देखकर जाना कि वह अनजान व्यक्ति वात सुन सकता है तो सांकेतिक भाषा में कहा—"दो चार वड़े आदमियों का नाम लेना, जैसे गांधी, नेहरू, लिंकन, लेनिन वगैरा।

"हाँ, हाँ, वह तो वहुत ही जरूरी है।

"अच्छा इस वक्त मुझे इजाज़त दीजिये, रात को घर पर आऊँगा, वाकी की वातें वहाँ होंगी।"

"विल्कुल ठीक।"

"तो मैं चलूँ ?" कविराज ने कुर्सी से उठते हुए कहा।

हाँ, पर रात को घर पर आना मत भूलना, वर्ना कल का सारा प्रोग्राम किरकरा हो जायेगा।"

"नहीं, नहीं, भूलूँगा कैसे !" कहते हुए कविराज ने विदा ली और ऑफिस से बाहर हो गये।

सेठ जी ने मेज़ पर बिखरे हुए एक-दो कागज़ इधर-उधर रक्खे। फिर घंटी बजाकर चपरासी को बुलाया। चपरासी आया तो बोले—"पानी पिला।"

चपरासी बाहर गया तो रमेश की तरफ देखकर कहने लगे—"हाँ, अब तुम बोलो भई।"

इतना बोल कर मेज़ पर रक्खे हुए एक कागज़ को उठाकर पढ़ने लगे। चपरासी एक गिलास पानी लाया। गटागट पानी पीकर गिलास मेज़ पर रख दिया। चपरासी खाली गिलास लेकर चला गया, मगर उनका ध्यान अभी तक कागज़ में ही अटका हुआ था। कुर्सी के हत्थे पर हाथ मारते हुए उन्होंने फिर पूछा—"राष्ट्रीय एकता के बारे में कुछ जानते हो क्या ?"

सेठजी का बेतुका प्रश्न सुनकर रमेश उनका मुँह देखने लगा। वे फिर बोल पड़े—"अरे भई, मुँह क्या देखते हो मेरा, मैं पूछ रहा हूँ कि राष्ट्रीय एकता के बारे में कुछ जानते हो क्या ?"

रमेश ने अपने आप पर नियंत्रण रखते हुए कहा—"जी थोड़ा-सा जानता हूँ।"

"जरा बताओ, क्या जानते हो।"

"यही कि राष्ट्र में सभी को एकता रखनी चाहिये। एकता होगी तो राष्ट्र के सभी लोग खुश रहेंगे।"

"बस !" आश्चर्य से सेठ जी बोले।

"जी मेरा राष्ट्रीय एकता से कुछ ज्यादा काम ही नहीं पड़ा।"

मेज़ पर रक्खे पेपर वेट को कागज पर रखते हुए कहा—"यही तो दुःख है। आज के नौजवान राष्ट्र और एकता के बारे में कुछ जानते ही नहीं हैं।

खैर! कल आज़ाद मैदान में अग्रवाल समाज की तरफ से एक सभा का आयोजन किया गया है। राष्ट्रीय एकता पर एक गोष्ठी है। मैं वहाँ अध्यक्ष हूँ, तुम आना चाहो तो आना और साथ में अपने दोस्तों को भी लाना।"

"जी बहुत अच्छा!"

"अच्छा .... वो......तुम्हारे काम के बारे में क्या है? मेरा मतलब हिसाब-किताब और रेकार्ड संभाल लोगे न?"

"जी हाँ जरूर संभाल लूँगा।"

"कितनी तनख्वाह में काम चल जायेगा?"

रमेश को सामने बैठा हुआ आदमी अब मूर्ख लगने लगा था। पर इस समय वह उसकी मूर्खता पर नहीं, अपनी दुर्दशा पर चिन्तित था! वह बोला—"देख लीजिये, बी० ए० पास हूँ। काम जैसा बतायेंगे, सब करता रहूँगा।"

पर काम ईमानदारी से होना चाहिये। दो महीने पहले हमने एक सुपरवाइज़र को निकाला है, उसने हमसे लुक-छुप कर एक कम्पनी को माल बेचा और हज़ारों रुपये अपनी जेब में डाल लिये। भई, बेईमान आदमी हमारे यहाँ नहीं चलेगा।"

रमेश को गुस्सा आया और इच्छा हुई कि पेपर वेट उठाकर उसके सिर पर दे मारे, मगर उसकी मजबूरी फिर बीच में आ खड़ी हुई। उसने कृत्रिम विनम्रता से कहा—"जी कभी भी आपको ऐसी शिकायत का मौका नहीं मिलेगा।"

"तो ठीक है, फिलहाल हम तुम्हें डेढ-सौ रुपये महावार देंगे, तुमने मेहनत और ईमानदारी से काम किया तो जल्दी ही तनख्वाह बढ़ा दी जायेगी। क्यों ठीक है न?"

"मैं क्या कहूँ, जैसा आप ठीक समझें।"

"तो ठीक है, मैं बनवारी को कह देता हूँ कि वह तुम्हें सारा काम समझा दे।"

उन्होंने घंटी बजाई, चपरासी आया। उसे बनवारी को बुलाने के लिए कहा। रमेश फिर सोचने लगा कि यह आदमी कल राष्ट्रीय एकता पर

अध्यक्ष-पद से बोलेगा, जबकि जीवन के व्यवहार में यह खुद कहीं भी किसी के साथ एकता निभाने में विश्वास नहीं करता। यह आदमी दूसरे आदमी के साथ एक गिलास में पानी पीने का कायल नहीं, एक कार में मजदूर के साथ बैठकर जाने के लिये तैयार नहीं और जातिविहीन एक अकेले नाम को अहमियत देने और पहिचानने से भी इन्कार करता है। कवि बावरा के मार्ग दर्शन में भाषण देने की तैयारी कर रहा है। भाषण में कुछ बड़े लोगों का नाम लेना भाषण की ट्रेनिंग का प्रमुख अंग है। कविराज ने जाते-जाते उस पर जोर दिया है। गांधी, नेहरू, वगैरा के नामों का सन्दर्भ देकर राष्ट्रीय एकता पर बोलने की तैयारी करने वाला यह आदमी खुद अपने जीवन में कितना बिखरा और टूटा हुआ है।

वनवारी आ पहुँचा। सेठ जी ने पूछा—"मजदूर को घर भेज दिया है ?"

"जी हाँ।"

"कब तक पहुँच जायेगा ?"

"एक डेढ़ घंटे में पहुँच जायेगा ?"

"क्या !" चौंक पड़े सेठ जी।

"सर, तीन चार मील का पैदल रास्ता तय करना है, इतना वक्त तो लगेगा ही।"

"सिर मेरा ! डेढ़ घंटे बाद पहुँच कर काम कब शुरू करेगा और काम खत्म कब करेगा। मैं घर पहुँच कर खाना खाकर वापिस यहां आ चुकूंगा, उसके बाद तो वह वहां पहुँचेगा।" वनवारी सेठ ने डरते हुए गिड़गिड़ाकर कहा—"इसलिये तो मैं कह रहा था कि उसे अपने साथ . . ."

वह अपनी बात पूरी नहीं कर सका, क्योंकि उसने देखा कि सेठ जी आग्नेय दृष्टि से उसे देख रहे हैं। सेठ जी ने कठोर मुद्रा और कटु स्वर से कहा—"कितनी बार समझा चुका हूँ कि ज्यादा होशियार बनने की कोशिश मत किया करो। तुम्हारी बेहूदा बातों से दूसरे नौकर भी बिगड़ने लगे हैं।"

अपनी बात खत्म करके सेठ जी ने रमेश की तरफ ऐसी दृष्टि से देखा, जिसमें रमेश को नौकर समझने की स्वीकृति मौजूद थी। उन्होंने फिर कहा—

"जाओ, इन्हें सारा काम अच्छी तरह समझा दो और दूसरी बातें भी ठीक-ठीक बता दो।"

"जी अच्छा।"

"जाओ जी इनके साथ।" सेठ ने लठ मारने जैसे स्वर में रमेश से कहा। रमेश उठकर बनवारी सेठ के साथ बाहर चला आया। दोनों बाहर कम्पाउन्ड की तरफ बढ़ने लगे। रमेश ने टटोलते हुए कहा—"लगता है सेठजी दिल के बहुत अच्छे आदमी हैं, वैसे थोड़ा गुस्सा जरूर करते हैं।"

"हां भैया, ऐसा ही कुछ है, धीरे-धीरे सब कुछ समझ जाओगे। आओ तुम्हें सिमेन्ट का गोदाम दिखा दूं। दूसरे काम बाद में समझ लेना, आज सिमेंट की सप्लाई है। दोपहर तक दो ट्रक माल बाहर भेजा जाना है।"

रमेश उसके साथ चलता हुआ बंगले के भीतर एक बहुत बड़े हॉल में पहुँचा, जहां सिमेन्ट की बोरियों के ढेर लगे हुए थे। कुछ मजदूर सिमेन्ट की बोरियाँ खोल कर सिमेन्ट फर्श पर बिखेर रहे थे। सारे हॉल के वातावरण में सिमेन्ट का गुबार छाया हुआ था।

बनवारी ने एक कुर्सी की ओर इशारा करते हुए कहा—"यहाँ बैठ जाओ और इन मजदूरों से जल्दी-जल्दी बोरियों में सिमेन्ट भरवा कर पाँच सौ बोरी सिमेन्ट तैयार करवा लो, मैं आता हूँ लौटकर।"

बनवारी अपनी बात खतम करके वहां से चला गया। रमेश हॉल का निरीक्षण करने लगा। आठ दस मजदूर जल्दी-जल्दी सिमेन्ट की बंधी हुई बोरियाँ खोल रहे थे, उसके पास ही एक ओर बड़ी ढेरी लगी हुई थी। यह ढेरी सिमेन्ट की नहीं थी। लगता था, सिमेन्ट के रंग की कुछ बारीक रेत है। पांच छः मजदूर सिमेन्ट की खाली होती बोरियों के सिमेन्ट में रेत मिलाकर एक तीसरी ढेरी बनाते जा रहे थे। कुछ मजदूर इस तीसरी ढेरी का सिमेन्ट जल्दी-जल्दी खाली बोरियों में भरकर उनका मुँह सी रहे थे। रमेश इधर-उधर घूमकर वस्तुस्थिति को समझने की कोशिश करने लगा। मजदूर व्यस्त होने की हालत में भी उसकी गतिविधि देख रहे थे। रमेश बारी-बारी से तीनों ढेरियों के पास घूम फिर गया। फिर मजदूर के मुखिया से पूछा—ये बोरियां खाली क्यों की जा रही हैं?"

मुखिया ने कुटिल दृष्टि से उसकी ओर देखकर पूछा—"आपको नहीं मालूम ?"

"बनवारी सेठ ने नहीं बताया ?"

"नहीं।"

"आप आज नये ही आये हैं न ?"

"हाँ।"

"तो सुनिये, इस सिमेन्ट में दूसरा सिमेन्ट मिलाकर माल पुख्ता और अच्छा बनाया जाता है। मिले हुए सिमेन्ट की तीसरी ढेरी में से बोरियाँ भर कर तैयार की जा रही हैं। आज काफी माल बाहर भेजना है।"

रमेश दूसरे सिमेन्ट की ढेरी के पास आया और पूछा—"यह सिमेन्ट है ?"

"हाँ, सिमेन्ट जैसा ही है।"

रमेश ने ढेरी में हाथ डालकर दूसरे नम्बर का सिमेन्ट उठाया और उंगलियों में मसलते हुए कहा—"यार यह तो पीसी हुई रेत है।"

मुखिया ने सुझाया—"धीरे बोलिये।"

"क्यों ?"

"सेठ जी के कान तक ऐसी बात नहीं जानी चाहिये।"

रमेश फिर गहरे विचार में डूब गया। सिमेन्ट में रेत मिलाकर भयंकर मुनाफाखोरी का भयंकर अजगर यहाँ फैला पड़ा था। रमेश की कल्पना में उस रेत मिले सिमेन्ट से बने स्कूल, मन्दिर, बाँध और घर एक-एक करके ढहते हुए नजर आने लगे। रेत मिले सिमेन्ट से उत्पन्न खतरनाक परिणामों की कल्पना से उसका मानस हिल उठा। वह चिल्ला पड़ा—"नहीं, बन्द करो यह मिलावट, यह चोरी है! बेईमानी है! देश और समाज के साथ गद्दारी है।"

काम करते हुए सभी मजदूर चौकन्ने हो गये। हरकत करते हुए उनके हाथ भी थम गये।

मुखिया ने कहा—"बाबू, अभी तो नौकरी शुरू भी नहीं हुई है, उसके पहिले ही खत्म कर रहे हो।"

"जाओ, इन्हें सारा काम अच्छी तरह समझा दो और दूसरी बातें भी ठीक-ठीक बता दो।"

"जी अच्छा।"

"जाओ जी इनके साथ।" सेठ ने लठ मारने जैसे स्वर में रमेश से कहा। रमेश उठकर बनवारी सेठ के साथ बाहर चला आया। दोनों बाहर कम्पाउन्ड की तरफ बढ़ने लगे। रमेश ने टटोलते हुए कहा—"लगता है सेठजी दिल के बहुत अच्छे आदमी हैं, वैसे थोड़ा गुस्सा जरूर करते हैं।"

"हां भैया, ऐसा ही कुछ है, धीरे-धीरे सब कुछ समझ जाओगे। आओ तुम्हें सिमेंन्ट का गोदाम दिखा दूं। दूसरे काम बाद में समझ लेना, आज सिमेंट की सप्लाई है। दोपहर तक दो ट्रक माल बाहर भेजा जाना है।"

रमेश उसके साथ चलता हुआ बंगले के भीतर एक बहुत बड़े हॉल में पहुँचा, जहां सिमेन्ट की बोरियों के ढेर लगे हुए थे। कुछ मजदूर सिमेन्ट की बोरियाँ खोल कर सिमेन्ट फर्श पर बिखेर रहे थे। सारे हॉल के वातावरण मे सिमेन्ट का गुबार छाया हुआ था।

बनवारी ने एक कुर्सी की ओर इशारा करते हुए कहा—"यहाँ बैठ जाओ और इन मजदूरों से जल्दी-जल्दी बोरियों में सिमेन्ट भरवा कर पाँच सौ बोरी सिमेन्ट तैयार करवा लो, मैं आता हूँ लौटकर।"

बनवारी अपनी बात खतम करके वहां से चला गया। रमेश हॉल का निरीक्षण करने लगा। आठ दस मजदूर जल्दी-जल्दी सिमेन्ट की बंधी हुई बोरियाँ खोल रहे थे, उसके पास ही एक ओर बड़ी ढेरी लगी हुई थी। यह ढेरी सिमेन्ट की नहीं थी। लगता था, सिमेन्ट के रंग की कुछ बारीक रेत है। पांच छः मजदूर सिमेन्ट की खाली होती बोरियों के सिमेन्ट में रेत मिलाकर एक तीसरी ढेरी बनाते जा रहे थे। कुछ मजदूर इस तीसरी ढेरी का सिमेन्ट जल्दी-जल्दी खाली बोरियों में भरकर उनका मुँह सी रहे थे। रमेश इधर-उधर घूमकर वस्तुस्थिति को समझने की कोशिश करने लगा। मजदूर व्यस्त होने की हालत में भी उसकी गतिविधि देख रहे थे। रमेश बारी-बारी से तीनों ढेरियों के पास घूम फिर गया। फिर मजदूर के मुखिया से पूछा—ये बोरियां खाली क्यों की जा रही हैं?"

मुखिया ने कुटिल दृष्टि से उसकी ओर देखकर पूछा—"आपको नहीं मालूम ?"

"बनवारी सेठ ने नहीं बताया ?"

"नहीं।"

"आप आज नये ही आये हैं न ?"

"हाँ।"

"तो सुनिये, इस सिमेन्ट में दूसरा सिमेन्ट मिलाकर माल पुख्ता और अच्छा बनाया जाता है। मिले हुए सिमेन्ट की तीसरी ढेरी में से बोरियाँ भर कर तैयार की जा रही हैं। आज काफी माल बाहर भेजना है।"

रमेश दूसरे सिमेन्ट की ढेरी के पास आया और पूछा—"यह सिमेन्ट है ?"

"हाँ, सिमेन्ट जैसा ही है।"

रमेश ने ढेरी में हाथ डालकर दूसरे नम्बर का सिमेन्ट उठाया और उंगलियों में मसलते हुए कहा—"यार यह तो पीसी हुई रेत है।"

मुखिया ने सुझाया—"धीरे बोलिये।"

"क्यों ?"

"सेठ जी के कान तक ऐसी बात नही जानी चाहिये।"

रमेश फिर गहरे विचार में डूब गया। सिमेन्ट में रेत मिलाकर भयंकर मुनाफाखोरी का भयंकर अजगर यहाँ फैला पड़ा था। रमेश की कल्पना में उस रेत मिले सिमेन्ट से बने स्कूल, मन्दिर, बाँध और घर एक-एक करके ढहते हुए नजर आने लगे। रेत मिले सिमेन्ट से उत्पन्न खतरनाक परिणामों की कल्पना से उसका मानस हिल उठा। वह चिल्ला पड़ा—"नहीं, बन्द करो यह मिलावट, यह चोरी है! बेईमानी है! देश और समाज के साथ गद्दारी है।"

काम करते हुए सभी मजदूर चौकन्ने हो गये। हरकत करते हुए उनके हाथ भी थम गये।

मुखिया ने कहा—"बाबू, अभी तो नौकरी शुरू भी नहीं हुई है, उसके पहिले ही खत्म कर रहे हो।"

"तो तुम लोग नौकरी के खातिर यह कुकर्म कर रहे हो, शर्म नहीं आती तुम लोगों को।"

एक मजदूर कुछ आगे बढ़कर बोला—"वनवारी सेठ पागल आदमी को कहाँ से पकड़ लाया।"

"अच्छा तो मैं पागल हूँ, तुम वेईमान लोगों को मैं पागल नज़र आता हूँ। अरे वेईमानों भगवान के घर क्या मुँह दिखाओगे?"

अब तक वनवारी सेठ लौट आया था। वहाँ हलचल और काम को रुका हुआ देखकर वह बोला—"क्या बात है! काम क्यों रोक दिया।"

"नये वाबू ने रोका है।" एक मजदूर बोला।

वनवारी ने रमेश की ओर देखकर पूछा—"क्या बात है?"

"वहुत बुरी बात है। तुम लोग तो सिमेन्ट में रेत मिलाकर बेचते हो। यह सरासर बेईमानी, धोखा और मुनाफ़ाखोरी है, यह गद्‌दारी है।"

वनवारी सेठ ने उससे पूछा—"तुम ईमानदारी ढूँढने आये हो या नौकरी करने आये हो?"

"मैं ईमानदारी से नौकरी करने आया हूँ।"

"मतलब तुम्हें छोड़ कर बाकी सव वेईमान हैं।"

"वेईमानी तो आँखों के सामने ही है।"

सेठ जी कार्यालय से निकलकर घर जाने के लिये अपनी कार की तरफ वढ़ रहे थे। हॉल में ऊँची आवाज़ और हलचल देखी तो उस तरफ चले आये। सभी मजदूरों को वहाँ खड़ा देखकर कहने लगे—"क्या हरामख़ोरी लगा रक्खी है तुम लोगों ने। काम कर रहे हो या गप्पें मार रहे हो?"

वनवारी ने सेठ जी से कहा—"नये वावू जरा गड़वड़ा गये हैं, सर!"

"क्या हुआ?"

रमेश ने आगे वढ़कर कहा—"सेठ जी, क्या नहीं हो गया और क्या नहीं हो रहा!"

सेठ जी के सामने इस तरह वात करने वाला आश्चर्य और क्रोध की दृष्टि से देखा जाता था। उन्होंने कठोर होकर पूछा—"क्या है, मुँह से वोलो।"

"आपके यहाँ जबरदस्त अनर्थ हो रहा है, आप सिमेन्ट में रेत मिलाकर बेच रहे हैं, जरा सोचिये, इसका क्या परिणाम होगा ?"

सेठ जी ने क्रोध से बनवारी की तरफ देखकर कहा—"बनवारी, तुम कहाँ से पकड़ कर लाये हो इस आदमी को ?"

"सर, मैं नहीं लाया पकड़कर, यह खुद ही नौकरी ढूँढने यहाँ आया था।"

"निकालो इसे धक्के देकर बाहर।" सेठ जी चीख पड़े।

"चलो भई, छुट्टी करो।" बनवारी ने कहा।

"पर सेठ जी, मेरी बात सुनिये! यह सरासर ग़लत है!"

"अबे निकल बाहर ईमानदार की दुम!"

रमेश को दो-तीन मजदूर मिलकर बाहर निकालने लगे, मगर वह अपनी बात कहने के लिए सेठ जी की तरफ बढ़ता हुआ बोला—"सेठ जी, मैं तो चला ही जाऊँगा, पर मेरी बात तो सुनिये।"

"अबे फरिश्ते के बच्चे, निकल यहाँ से बाहर।"

मजदूर उसे बाहर निकालने के लिए खींचातानी करने लगे। रमेश ऊँची आवाज़ में चीखने लगा—"भगवान से डरो सेठ जी, ऐसा जुल्म मत करो। हो सकता है इस रेत मिले सिमेन्ट से किसी मन्दिर की दीवार बने जहाँ आपकी बीवी आपके लिये और आपके बच्चों के लिए प्रार्थना करने पहुँच जाय, अगर वह दीवार गिर पड़ी तो। सेठ जी, हो सकता है कि रेत मिले इस सिमेन्ट से किसी स्कूल की छत बने, जिसके नीचे बैठकर आपका बच्चा पढ़ने जायेगा, वहाँ आपकी बेईमानी और रेत ने ऐन मौके पर दगा दे दिया तो आपके बच्चे के साथ-साथ दूसरे बच्चों का क्या हाल होगा, जरा सोचिये।"

मजदूर अब उसे धक्के देने लगे। मगर वह बोलता ही जा रहा था। और ऊँची आवाज़ में चीखते हुए उसने कहा—"सेठ जी यह भी हो सकता है कि रेत मिला यह सिमेन्ट किसी थियेटर हाल की छत में जा लगे, और जब कभी आप अपने बाल बच्चों के साथ वहाँ सिनेमा देखने जायें तो रेत मिला हुआ यह सिमेन्ट आपको देखकर अपनी कब्र से मचल उठे और आपसे मिलने नीचे तक चला आये।"

"बनवारी इसे उठाकर बाहर फिकवा दो।"

मजदूरों की धक्का-मुक्की में और गति आई, उसी अनुपात में रमेश का चीखना भी बढ़ गया वह कह रहा था—"अरे सेठ मुनिशकुमार गुप्ता, रेत मिला यह सिमेन्ट अगर किसी बाँध में जा लगा तो हजारों लाखों की जाने चली जाँयगी और करोड़ों का नुकसान हो जायगा। मान जा सेठ, मान जा, मत कर ऐसा।"

अब तक मजदूर उसे गेट के बाहर धकेल चुके थे। वह गेट के बाहर खड़ा होकर बड़बड़ा रहा था। सेठ जी बनवारी से बोले—"किस बेवकूफ को पकड़ लाये तुम, जिन्दगी में अच्छा काम न करने की कसम खाई है तुमने। चलो, काम करवाओ जल्दी-जल्दी।"

उसके बाद सेठ जी अपने कार्यालय की तरफ गये। वहां जाकर पुलिस स्टेशन पर फोन करके अपने मित्र पुलिस इन्सपेक्टर को अगाह किया कि वह दोपहर का खाना आज उनके साथ खायेगा।

८

कटे हुए पेड़ की तरह गिरते-पड़ते रमेश शाम को घर में दाखिल हुआ तो माँ उसका उतरा हुआ चेहरा देखकर परेशान हो गई। माँ का खिला हुआ चेहरा देखकर वह उससे भी अधिक परेशान हुआ। माँ के पास खाट पर बैठते हुए उसने पूछा—"कैसी तबियत है माँ?"

"मैं बिल्कुल ठीक हूँ।"

"शीला घर कब गई?"

"अभी-अभी गई है।"

"क्या कुछ खास बात है, आज तुम खुश नज़र आ रही हो।"

"हां, बहुत ही खास बात है।"

"क्या ?"

जवाब में माँ ने तकिये के नीचे से अमृत कौर हॉस्पिटल का नियुक्ति पत्र निकाल कर हाथ में रख दिया। रमेश ने पढ़ा और उसके चेहरे का भारीपन भी जाता रहा। लम्बी सांस लेकर वह बोला—"भगवान का लाख-लाख शुक्र है।"

"कब जायेगा ?"

"कल ही जाऊँगा।"

"अच्छा चल कुछ खा ले, सुबह से भूखा होगा। कुछ खाया है कहीं ?"

"हाँ, खाया है।"

"क्या खाया ?"

"गालियाँ और धक्के।"

"चल, बकता है ! गालियां और धक्के कौन देगा।"

"सच कह रहा हूँ माँ, आज गालियों से भी ज्यादा धक्के खाने पड़े।"

फिर उसने शुरू से आखिर तक सारा किस्सा कह सुनाया। उसकी बात सुन कर मां गम्भीर होकर बोली—"रमेश, एक बात तो बता, बेटे।"

"बोल माँ।"

"मुझे कभी मुझ पर गुस्सा आता है ?"

"किसलिये ?"

"मैंने तुझे जीवन की कठोर परीक्षाओं के बीच छोड़ दिया है।"

"कठोर परीक्षाएँ पास करने के बाद आदमी ऊँचाई पर भी तो जाता है।"

"ईश्वर तेरी सुबुद्धि बढ़ाये। चल खाना खा।"

मां उसे खाना देने के लिए उठने लगी तो रमेश ने उसे रोक दिया और कहा—"तू बैठी रह, मैं खुद ले लूँगा। हां, यह तो बता कि तूने क्या खाया है ?"

"मैंने खिचड़ी खाई है।"

"यह सब बनाया किसने ?"

"शीलू ने।"

"शीला आजकल बहुत काम करती है, मास्टर जी कहीं मुँह तो नहीं बनायेंगे।"

रमेश अपना खाना लेकर माँ के पास स्टूल पर बैठकर खाने लगा।

मां ने कहा—"मुँह तो नहीं बनायेंगे, मगर प्रोग्राम दूसरा बना रहे हैं।"

रमेश का निवाला हाथ में रह गया। उसकी प्रश्नवाचक मुद्रा का जवाब देते हुए मां ने कहा—"हमारी गरीबी हमारे रिश्ते के बीच एक गहरी खाई बन गई है, बेटा। मै तो खुद बहुत दिनों से सोच रही थी कि मास्टर भैया को कह दूँ कि शीला की बात कहीं और पक्की कर दो, मगर आज पता चला कि वे खुद भी ऐसा ही कुछ कहने का विचार लिये बैठे है।"

बात को बनाते हुए रमेश ने पूछा—"तुम शीला से नाराज हो गई हो क्या ?" "तू तो पगला है! जरा सी बात भी नही समझता। मैं भला शीलू से क्यों नाराज होने लगी। पर यह भी तो सोचना है कि जवान बेटी कब तक बाप की छाती पर बैठी रहेगी। तेरी नौकरी के लिये मास्टर जी अपनी बेटी को कब तक घर में बैठाये रखेंगे। उन्होंने तो शर्म के मारे आज तक कुछ कहा नहीं, पर मेरी आँखें भी तो कुछ देखती हैं। आज सुबह वे आये थे, यही कुछ कहने। मगर उनसे पहिले मैंने ही कह डाला। तब तक पोस्टमेन तेरी नौकरी की चिठ्ठी दे गया।"

रमेश कुछ बोलने लगा था कि शीला हाथ में कटोरी ढके वहां आ पहुँची। कटोरी मां की तरफ बढ़ाकर बोली—"लो ताई, भरवाँ करेले बनाये हैं, तुम्हारे लिये लाई हूँ।"

"मेरे लिये लाई है ?"

"हां।"

"तो दवाई और खिचड़ी खाने के बाद अब भरवां करेले खाऊँ ?"

"ताई लो भी !" चिढ़कर शीला ने कहा !

"दे क्यों नहीं देती रमेश को।"

शीला ने कटोरी रमेश की थाली में रख दी। उसने कटोरी में देखा, फिर शीला की तरफ देखकर बोला—"आज सुबह भी भरवाँ करेले खा चुका हूँ।"

"कहां ?" मां ने पूछा

"एक बहुत बड़े सेठ के यहां।"

शीला मां की खाट के पास खड़ी थी। मां ने उससे कहा—"अरी तू खड़ी क्यों है, बैठती क्यों नहीं ?"

शीला मां के पास बैठ गई। मां ने रमेश से पूछा—"ऐसा कौन सा सेठ है जो करेले खिलाता है ?"

"कैसी बात करती हो। तुम भी ! करेले कौन खिलाता है। मैंने तो पूरा खाना खाया था। खाने में करेले भी थे।"

आश्चर्य से वह बोली—"अच्छा ! कौन सेठ है भई, जिसने तुझे आज खाना खिलाया ?"

"बहुत बड़ा सेठ है, मां।"

"होगा, पर तुझे खाना क्यों खिलाया।"

"उसका मुझ से एक बड़ा मतलब अटका पड़ा है।"

शीला और माँ दोनों की उत्सुकता जागृत हो गई। मां ने फिर पूछा—"पूरी बात बता अच्छी तरह।" मुंह चलाते हुए उसने कहा—"करेले तो ये भी अच्छे हैं मगर....."

शीला कनखियों से उसकी शरारत को पकड़ने की कोशिश कर रही थी। मां ने उसे छेड़ा—"अच्छे हैं तो मगर कहां से आ गया।"

"उतने अच्छे नहीं है, मां।"

"तो सेठ के घर पर खाये करेले इससे ज्यादा अच्छे थे।"

"हाँ।" सिर हिलाकर शीला की तरफ देखकर वह बोला।

माँ ने शीला का पक्ष लेकर कहा—"सेठ के यहाँ छप्पन मसाले डाले गये होंगे, उसके बूढ़े रसोईये ने बनाये होंगे, ये तो शीला ने सीधे-सादे हिसाब से बनाए हैं।"

"नहीं, यह बात नहीं। न तो रसोईये ने बनाये और न छप्पन मसाले डाले गये।"

"फिर क्या बात है ?"

"करेले सेठ की लड़की ने बनाये थे।"

"अच्छा, शीला लड़की नहीं है क्या ?"

शीला की चेतना में और अधिक चैतन्य आ गया। वह आगे की बात जानने के लिए उत्सुक हो गई। माँ का हाथ पकड़कर वह बोली—"ताई, मेरे करेले वापिस करवा दे।"

"क्या करोगी वापिस ले जाकर। आधे तो मैं खा चुका हूँ। बचे हुए करेले रात को फेंकने ही थे, तुम यहाँ ले आई वाह-वाह लूटने।"

"सुन रही हो ताई, है जमाना भलाई का ?"

माँ हँसकर बोली—"इससे आगे की बात तो सुन।" फिर रमेश से बोली—"हां, तो सेठ अटका हुआ कैसे है तेरे पास ?"

निवाला निगलते हुए रमेश ने कहा—"बात यह है मां कि उसके एक ही बेटी है।"

अपनी बात कहकर रमेश मुस्कराहट नहीं दबा सका। शीला भी कृत्रिम क्रोध से उसे देखती हुई मुस्करा रही थी। मां भी सिर हिलाकर मुस्कराते हुए कहने लगी—"तो यह बात है, उसके एक ही बेटी है और वह अपनी बेटी तेरे साथ ब्याहना चाहता है ?"

"हाँ।"

"तो फिर देर किस बात की है बेटे ?"

"बीच में एक गड़बड़ है।"

"वह क्या ?"

"लड़की लंगड़ी है।"

शीला और मां हँस पड़े।

"तुम लोग हँसते क्यों हो ?"

"तेरा काम अटक गया न बेटे।"

"नहीं मां, काम अटका नहीं है, लंगड़ी है तो क्या हुआ। सेठ देहज में लाखों रुपयों का माल देगा। उस बेचारी का लंगड़ापन मुझे कहाँ दुःख देगा।"

"तो फिर बात अब तक आगे क्यों नहीं बढ़ी।"

"थोड़ी सी गड़बड़ और है।"

"वह क्या ?"

"लड़की एक आँख से कानी भी है।"

शीला बेबाक हंस पड़ी, मां भी उसके साथ हंसने लगी।

"मगर मां, उसका कानापन मुझे कहां तकलीफ देगा। एक आंख से मुझे तो पूरा ही देखेगी, मैं आधा तो नहीं दीखूंगा।"

"तो फिर ले आ उसे व्याह कर।"

"एक और गड़बड़ है।"

"वह क्या ?"

"मोटी बहुत है।"

"तुझे कहां अटकेगा उसका मोटापा ?"

"नहीं माँ नहीं कभी गुस्सा आ गया तो पकड़कर मारेगी मुझे तुम तो दूर खड़ी देखती रहोगी, छुड़ाने भी नहीं आओगी।"

शीला फिर हंस पड़ी

"शीलू आ जाया करेगी छुड़ाने।"

"माँ, तब तक तो इसकी भी शादी हो जायगी, पता नहीं यह यहाँ होगी भी या नहीं। और होगी भी, तो, इसका मियाँ क्यों आने देगा। मियाँ-बीबी के झगड़े में।"

शीला भड़क उठी। खाट से उठते हुए बोली—"ताई मैं चलती हूँ, करेला असर करने लगा है।"

"अरी बैठ ना।"

"फालतू की बातें सुनकर मेरे सिर में दर्द होता है।"

"सिर दर्द के लिए बाम है हमारे यहां। गोलियां भी हैं।"

मां बीच में पड़कर बोली—"शुरू हो गया तुम दोनों में जंग। बचपन की आदतें कब जायेंगी तुम लोगों की।"

"आदतें तो चली जायेंगी, तुम मुझे ठीक से कुछ बताओ, नहीं तो एक बहुत अच्छा चान्स चला जायेगा।"

"क्या बताऊँ ?"

रमेश खाना खा चुका था। थाली उठाकर वह रसोई की तरफ चला गया। हाथ धोकर वापिस आया तो कहने लगा—"मार खाते वक्त छुड़ाने अगर तुम गारन्टी दे दो, तो कल सेठ से बात पक्की कर लूं।"

"मै तो गारन्टी दे दूंगी, मगर सेठ दहेज में क्या देगा ?"

"एक इम्पाला कार, एक बंगला, पचास तोला सोना, सवा लाख रुपये नकद।"

"और साथ में वह मोटी, कानी, लंगड़ी लड़की भी।"

शीला फिर उठ खड़ी हुई। चलते-चलते कहने लगी—

"आज रात को नीद नहीं आने वाली है, ताई, साथ में तुम्हें भी जागना पड़ेगा। मैं चलूँ, पिताजी आने वाले हैं !"

शीला चली गई। रमेश मां के पास आकर उसके पाँव दबाने और तलुए सहलाने लगा।

९

अस्पताल में स्टोर-कीपर की जगह नियुक्त हुए, आज रमेश को चौथा दिन था। वह खुश था कि उसे अच्छी जगह नौकरी मिल गई है और जल्दी ही अच्छा-सा क्वाटर भी मिल जाएगा। स्टोर में उसके साथ काम करने वाला एक अन्य कर्मचारी लम्बी छुट्टी गया था। अतः इन दिनों उसका काम भी रमेश को ही संभालना पड़ रहा था। गरीब मरीजों को मिलने वाला दूध, फल, मेवे वगैरा की व्यवस्था उसी के हाथ में थी।

अस्पताल के सुपरेन्टेन्डेन्ट, मेटर्न, सीविल सर्जन और अन्य अनेक डॉक्टर उसे पहिंचानने लगे थे और उसके व्यवहार से खुश व सन्तुष्ट थे।

एक दिन कॉलेज जाते हुए शीला उसका खाना देने अस्पताल में आई!

अस्पताल कॉलिज के रास्ते में ही पड़ता था। मां के बार-बार इन्कार करने पर भी वह खाना थैली में डालकर स्टोर का पता पूछती हुई रमेश के पास जा पहुँची। उस वक्त रमेश स्टोर में अकेला बैठा मरीजों को दिये जाने वाले फलों और सूखे मेवों का हिसाब-किताब कर रहा था। शीला को सामने कुर्सी पर बैठाते हुए रमेश ने पूछा—"कहो, क्या पिओगी, चाय या काफी ?"

"अजी स्टोर कीपर साहब, आप तकलीफ मत करिये, अपना खाना संभालिये।"

"तो आओ आज दोनों साथ बैठकर खाना खायें।"

"कहां ?"

"यहीं।"

"बहक क्यों रहे हो।"

"मेरे साथ खाना नहीं खाओगी ?"

"खाना तो मैं खाकर आई हूँ, चाय पीती ही नहीं हूँ। इतने पर भी खातिर करना चाहते ही हो तो मैं मौका दे सकती हूं।"

"तो बोलो न ?"

शीला ने कोने की बड़ी मेज़ पर रक्खे हुए फलों के ढेर की तरफ देखकर कहा—"फल और मेवे खिलाने की बात करो !"

"अच्छा तो अब मेरी परीक्षा ली जा रही है।"

"परीक्षा में फेल मत हो जाना।"

"फेल होने के डर से मैं परीक्षा दूंगा ही नहीं।"

"तो चलो छुट्टी हो गई, मैं तो इतनी वजनदार थैली इस लालच से उठा-कर लाई थी कि आज स्टोर-कीपर साहब के पास चलकर कुछ ताजे फल और मीठे मेवे खायेंगे। पर लगता है कि कर सेवा खा मेवा वाली कहावत जमाने के साथ झूठी पड़ गई है।" सब्र से काम लो, सेवा का मेवा जरूर मिलेगी।"

शीला ने स्वर को मन्द करके, किसी को सुनाई न दे इस अन्दाज़ से कहा—"चलो मुझ से तुम्हें प्यार नहीं, पर ताई के लिए तो कुछ फल और मेवे थैली में डाल दो।"

रमेश ने मुस्कराकर कहा—"मैंने कहा है न कि मैं परीक्षा नहीं दूंगा,

क्यों तुम मेरी परीक्षा लेने पर उतारू हो।" "अच्छा वावा अच्छा! मत दो परीक्षा। अव यह वताओ कि क्वाटर कब तक मिलेगा?"

"लगेंगे पन्द्रह वीस दिन।"

"फिर ताई को लेकर यहां आ जाओगे?"

शीला के प्रश्न में वियोग की वेदनाजनित शिकायत थी। रमेश ने उसकी आंखों में झांका। वहां कुछ-कुछ तरलता तैर रही थी।

रमेश ने कहा—"मां को लेकर यहां आ जाऊंगा, उसके बाद तुमको लेकर आने की वारी होगी।"

"मगर तव तक?"

"मन को समझाना होगा।"

"वचपन से लेकर आज तक मन को समझाने का काम नहीं पड़ा, कैसे होगा मुझ से यह काम।"

"देख तो रही हो तुम कि कैसी-कैसी स्थिति से गुज़रना पड़ रहा है। आखिर कुछ पाने के लिए कुछ खोना तो पड़ेगा ही।"

"क्या खोना पड़ेगा मुझे?"

"कुछ दिनों का साथ।"

"मतलब यह है कि यहां आने के वाद मिलना-जुलना एक दम बन्द हो जाएगा।" "ऐसे कैसे होगा, तुम यहां आया करोगी, मैं वहाँ आया करूँगा। मिलना-जुलना वन्द कैसे होगा!"

"पर वह बात तो नहीं रहेगी, काफी फर्क पड़ जायेगा।"

"शीलू, कुछ ही दिन की बात है, बाद में सब ठीक हो जाएगा।"

शीला ने चलने के लिए उठते हुए और वगल में कितावें दवाते हुए बोली—"अच्छा है जल्दी सव ठीक हो जाय, अगर देर हुई तो सब वेठीक हो जायगा।"

"ऐसा क्यों सोचती हो, वैठो तो।"

"शीला जैसे वैठने के लिए तैयार ही थी। वह वैठ गई। वैठने के बाद कहने लगी—सोचना पड़ रहा है। तुम्हें तो ताई ने वता ही दिया होगा कि

पिताजी और ताई दोनों मिलकर मुझे कहीं और भेजने की बात सोच रहे हैं।"

मेज़ पर रक्खे एक रजिस्टर को खोलते हुए रमेश ने कहा—"कसूर न तो तुम्हारे पिताजी का है, न माँ का। सच यह है कि मेरी गरीबी और मेरा दुर्भाग्य राह में रोड़े अटका रहे हैं।"

उदासमना होकर शीला ने कहा—"राह के ये रोड़े मुझे तो कहीं का न छोड़ेंगे। अच्छा हुआ तुम्हें अच्छी नौकरी मिल गई और राह साफ हो गया। पिताजी रात कह रहे थे कि रमेश को अच्छी नौकरी मिल गई है अब चिन्ता की बात नहीं।"

"हां शीलू, अब सचमुच चिन्ता की कोई बात नहीं। भगवान ने हमारी सुन ली है।

"भगवान को सुननी ही पड़ेगी। ताई ने तुम्हें तपा तपाकर चमकदार सोना बनाया है। इस चमक से भगवान भी चका-चौंध हो जायगा।"

रमेश ने मुस्कराकर कहा—"बड़े मीठे सुर निकाल रही हो।"

"मन की बात कह रही हूँ।"

"मां ने तो सोना बनाया, तुम क्या बनाओगी।"

"कोशिश करूँगी, सोने में सुगन्ध लाने की।"

"बहुत बड़ा काम है। तुम तो सिर्फ भरवाँ करेले खिलाया करना।"

"सेठ की बेटी से बनवा लेना करेले।"

"कौन सी बेटी! कैसा सेठ। छोड़ो बकवास। मैं तो ताज्जुब करता हूँ कि करेले जैसी कड़ुवी चीज में भी तुम कितना स्वाद और मिठास पैदा कर लेती हो।"

शीला उठ खड़ी हुई और बोली—"वक्त आने दो, करेले का मुरब्बा बनाकर खिलाऊँगी। अभी तो चलूँ, कॉलिज को देर हो रही है।"

लम्बी सांस लेकर रमेश ने कहा—"कुछ देर और बैठती तो मन लगा रहता।"

"स्टोर के काम में मन लगाओ स्टोर-कीपर साहब, मैं चलती हूँ।"

शीला चलने के लिए ज्योहीं मुड़ी त्योहीं तीन-चार वर्ष के बच्चे का हाथ पकड़े हुए एक महिला ने कमरे में प्रवेश किया। उसने रमेश की ओर अत्यन्त नम्रता और भद्रता से देखते हुए शिष्ट स्वर में पूछा—"भाई साहब, लेडीज़ जनरल वार्ड किधर है ?"

"बहिन जी, यहां लेडीज के चार वार्ड हैं, आपको कौन से वार्ड में जाना है ?"

वह भद्र महिला तनिक परेशान हुई। फिर कुछ सोचकर कहा—"वह तो नहीं मालूम, मरीज टी० बी० का बीमार है।" "हाँ हाँ ! तो फिर आप वार्ड नम्बर तीन में जाईये। इस गेलरी से आगे निकलकर दायें घूमिये। सामने ऑपरेशन थियेटर है। बस उससे अगला गेट वार्ड नम्बर तीन का है।"

"शुक्रिया भाई साहब।"

बातों में खोई हुई महिला, जो अब तक अपने साथ के बच्चे से बेखबर थी, अपनी उंगली और हाथ की पकड़ में बच्चे को न पाकर एक दम चौंक पड़ी—"अरे चिन्टू कहाँ गया !"

चिन्टू नाम का बालक कब फलों की मेज़ के पास पहुँचकर और वहाँ रक्खे सेवों में से एक सेव उठाकर उसमें दांत मारने लगा था, इस बात से तीनों ही बेखबर थे। महिला की नज़र बच्चे चिन्टू पर गई तो वह चीखी "चिन्टू, शेम ! यह क्या किया तुमने ! चलो रक्खो सेव मेज़ पर।"

बच्चा मचलकर बोला—"नहीं।"

महिला ने डाँटकर कहा—"चलो रक्खो।"

"नही।" बच्चा जिद्द करते हुए बोला।

महिला ने एक हल्का सा चपत उसके गाल पर लगा दिया और हाथ से सेव छीन कर मेज़ पर रख दिया। बच्चा फर्श पर पसर गया और रोने चीखने लगा। रमेश ने देखा कि सेव दांतों से काटा जा चुका है और बच्चा मचल भी रहा है तो वह महिला से बोला—"बच्चा ही तो है, दे दीजिये।"

"नहीं भाई साहब, आदत खराब होती है।"

"वैसे सेव भी खराब हो चुका है, अब तो हमारे काम का रहा नहीं। कम-से-कम बच्चे के काम तो आने दीजिये।"

रमेश ने आगे बढ़कर मेज़ से वह सेब उठाया और बच्चे को पुचकार कर उसके हाथ में पकड़ा दिया। बच्चे ने सेब ले लिया और रोने-सुबकने की गति में विराम लगा दिया।

महिला ने शर्मिन्दा होते हुए कहा—"माफ करना भाई साहब, इस बच्चे की नाराजगी की वजह से आपको परेशानी हुई।"

"कोई बात नहीं बहिन जी, बच्चों का मामला ऐसा ही होता है।"

वह महिला बच्चे का हाथ पकड़कर सिमटती, सुकड़ती, शरमाती हुई बाहर चली गई।

"तो मैं चलती हूँ।"

"नहीं शीला, ठहरो।"

"क्यों ?"

"तुम्हें मेरा एक काम करना पड़ेगा।"

"क्या ?"

"तुम्हारे पास कुछ पैसे होंगे ?"

"हाँ हैं।" शीला ने मुट्ठी में बँधा रुमाल निकाल कर कहा।

"मुझे पैसे नहीं चाहियें।"

"फिर पूछा क्यों ?"

"तुम अस्पताल के बाहर वाले गेट पर जाओ। वहाँ फलों की दो दुकानें हैं। किसी भी दुकान से एक सेब खरीद लाओ।"

शीला आश्चर्यभरी दृष्टि से उसकी तरफ देखकर उसकी अद्‌भुत बात का अर्थ ढूँढने लगी।

"ऐसे क्या देख रही हो ?"

"एक सेब कम हो गया तो चलेगा नहीं।"

"नहीं, बिल्कुल नहीं चलेगा।"

"बच्चे ने खा लिया, तुमने तो नहीं खाया।"

"इस सच्चाई को तुम और मैं जानते हैं, बाकी लोगों को समझाना बहुत मुश्किल काम है।"

"अच्छा तो मैं सेब ले आती हूँ।" कह कर शीला चली गई। किताबें उसने वहीं मेज़ पर रख दीं।

रमेश अपना रजिस्टर उलट-पलट कर कुछ काम में लगा था तो सामने वार्ड की एक नौजवान मेहतरानी आ खड़ी हुई। उसने सिर उठाया तो मेहतरानी बोली—"राम राम साब।"

"राम राम!"

"कुछ काम धाम हो तो बोलना साब!"

"मेरा तो कोई काम नहीं, वार्ड में ही काम होगा।"

"वार्ड में झाड़ू मारा, फिनेल से धोया-पोंछा किया, इधर-उधर का सब सँडास और बाथरूम साफ किया।"

"तो अब घर जाकर आराम करो।"

"आराम किधर है साब! घर पर दो बच्चे हैं। मैं पहुंचूंगी तो जान खाने आयेंगे। पूछेंगे क्या लाई?"

रमेश धीरे-धीरे उसका मतलब समझ रहा था। उसने कहा—"बच्चे तो माँ से माँगेंगे ही। घर जाते हुए दुकान से मीठी गोलियाँ ले जाया कर और बच्चों को खुश रक्खा कर।"

"उन मदमाशों को गोली अच्छी नहीं लगती, सेब खाने की आदत पड़ गई है। एक-दो सेब देओ न साहब!"

रमेश ने तीखी नज़र से उसे देखा और बोला—"ये सेब और फल मरीजों के लिए हैं।"

"क्या फर्क पड़ता है साब, पहिले वाले साब तो रोज दो-चार सेब देते थे। आज तीन चार दिन से आप नये आये हैं। मैंने शर्म के मारे आपको बोला नहीं।"

रमेश को गुस्सा आ गया—"पहिले वाले साहब बेईमानी करते थे तो अब मैं भी बेईमानी करूँ?"

मेहतरानी पर उसकी बात का कुछ भी असर नहीं हुआ। वह कहने लगी—"अरे साब, एक दो सेब में किधर बेईमानी होती है। अभी-अभी आपने एक बच्चे को सेब दिया। अपनी माँ के साथ वह सेब खाता हुआ उधर

गया है।"

रमेश को मेहतरानी का इस तरह अड़ना और मुंह लगना अच्छा नहीं लग रहा था। वह तीखे स्वर में बोला—"मैंने दिया नहीं, बच्चे ने उठा लिया था, उसके बदले में दूसरा सेब मँगवाया है।"

"अजीब आदमी हैं साब आप! एक-दो सेब के लिए इतना सिरपच्ची करवाते हैं।"

"चल, जा यहाँ से, काम कर अपना, नहीं तो बोलता हूँ साहब को।" मेहतरानी अकड़ कर बोली—" जाती हूँ! जाती हूँ!! बड़ा आया सेब वाला, धरे रख अपने सेब! एक सेब देते हुए जान निकलती है।"

मेहतरानी चली गई। उसके जाते ही एक चपरासी अंजीरों का भरा एक बड़ा डिब्बा लेकर भीतर आया। डिब्बा मेज़ पर रखते हुए उसने कहा—"साहब, बड़े साहब ने अंजीर भिजवाई है और कहा है कि कुछ अच्छा अंजीर छाँट कर अलग रख देना।"

रमेश उसकी बात का अर्थ खोजता रहा, तब तक उस चपरासी ने डिब्बा खोलकर मुट्ठी भर अंजीर निकाली और एक अंजीर मुँह में डालते हुए बोला—"इस बार अंजीर अच्छी आई है साहब! चपरासी का नाम हरनाम था। रमेश ने अंजीर से भरा उसका हाथ पकड़ कर कहा—"हाँ हरनाम इस बार अंजीर जरूर अच्छी आई हैं, मगर नया स्टोर कीपर अच्छा नहीं आया। डालो अंजीर वापिस डिब्बे में।"

हरनाम ने मुट्ठी डिब्बे में पलटते हुए कहा—"गलती हो गई साहब, आगे से पूछकर लिया करूँगा।"

"ऐसी गलती भी मत करना। न पूछना, न लेना। जिस चीज़ पर हमारा हक नहीं, जिस चीज को हमने अपनी मेहनत से नहीं कमाया या मेहनत किये हुए पैसों से नहीं खरीदा उस पर हमारा क्या हक है।"

"आप ठीक कहते हैं, पर यहाँ तो ऐसा ही चलता है।"

"गलत चलता है।"

"डाक्टर लोग, नर्स, कम्पाउन्डर सब ऐसे ही चलाते हैं।"

"सौ आदमी मिलकर अगर मिट्टी खाने लगें, तो मिट्टी खाने लायक चीज़ नहीं बन जायेगी।"

हरनाम चपरासी अपने सामने इस अजुबे को देखकर हैरत में आ गया। अधेड़ उम्र का यह चपरासी करीब पिछले २० वर्षों से अस्पताल में काम कर रहा था। वह जानता था कि डाक्टर, नर्स, कम्पाउन्डर तथा दूसरे कर्मचारी अस्पताल की चीज़ों का किस तरह इस्तेमाल करते हैं। गरीब मरीज़ों के लिये आने वाले इन्जेक्शन, गोलियाँ, दूध, फल और ताकत की दवाइयाँ, सब कुछ इन्हीं लोगों के घरों में पहुँचती थीं। आश्चर्य की बात यह है कि स्टोर कीपर खुद पहुँचाया करता था। बेईमानी का काला तम्बू दूर तक इस तरह फैला हुआ था कि ईमानदारी का एक सफ़ेद टुकड़ा भी आँखों में खटकने लगता।

हरनाम माफ़ी माँगकर चुपचाप चला गया। उसके जाने पर शीला हाथ में सेब लेकर आई और मेज़ पर रखते हुए बोली—कौन ले सकेगा तुम्हारी परीक्षा, तुम तो परीक्षा के ऊपर से होकर निकलने वाले प्राणी हो।"

"ऐसा नहीं है शीलू, बड़ी कठोर परीक्षाओं से मुझे गुजरना है। एक बड़ी अजीब सी सच्चाई सुनो। किसी बेईमान ने किसी जगह खड़े होकर या बैठकर बहुत समय तक बेईमानी की हो, तो उस जगह कोई ईमानदार आदमी टिक नहीं सकता। अगर टिक जाये तो यह चमत्कार या दुनियाँ का आठवाँ आश्चर्य होगा।"

फिर उसने मेहतरानी और हरनाम की बात बताई। शीला शीघ्र ही वहाँ से निकलकर कॉलेज की तरफ चल दी।

१०

रमेश आज अस्पताल पहुँचा तो उसने गेट के भीतर भारी भीड़ देखी। भीड़ में उसे दो पुलिस-मेन भी दिखाई दिये। भीड़ को चीर कर उसने भीड़ इकट्ठा होने की उत्सुकता में आगे बढ़कर झाँका। हाथ, पाँव और सिर में पट्टी बँधे तीन आदमियों को पुलिस ने जंजीरों में जकड़ रक्खा था। लोगों की

आपसी बातों से पता चला कि चोर लोग हैं। रात एक मोहल्ले में पकड़े गये और लोगों ने मिलकर खूब मारा। चोरों की शक्ल देखने के इरादे से रमेश घूमकर नज़दीक गया। उसके आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा जब उसने देखा कि तीनों वे ही लोग हैं जो उस रात बारह बजे मिले थे। वह कादिर और अब्दुल को पहिचान गया। कादिर पुलिस वाले से कह रहा था—"हवलदार साहब, बीड़ी का बन्दोबस्त तो करो।"

"निकालो पैसे।" हवलदार ने कहा।

"पैसे कहाँ हैं हमारे पास।"

इन तीनों में से किसी ने भी अभी तक रमेश को नहीं देखा था। हवलदार और कादिर की बात सुनकर वह अस्पताल के बाहर वाली बीड़ी-सिगरेट की दुकान पर पहुँचा। वहाँ से उसने सिगरेट का एक पैकेट और माचिस खरीदी फिर वापिस भीड़ में आ मिला। भीड़ को हटाता हुआ वह कादिर के पास पहुँचा और सिगरेट का पैकेट आगे बढ़ाते हुए बोला—"लो कादिर मियाँ, सिगरेट पीओ।"

कादिर और उसके दोनों साथियों ने हैरत से रमेश को देखा। पुलिस वाले तथा अन्य तमाशाई भी हैरानी से सिगरेट पिलाने वाले को देख रहे थे। अपनी तरफ ऐसे देखते हुए देखकर रमेश ने पूछा—"क्यों, पहिचाना नहीं?"

"अरे वही उस रात वाला है यह तो।" अब्दुल ने कादिर से कहा। कादिर ने पहिचानते हुए कहा—"अरे हाँ! खूब मिले भई।"

"लो सिगरेट तो पीओ।"

कादिर ने सिगरेट का पैकेट और माचिस ले ली। पेकेट खोलकर एक सिगरेट जलाई फिर साथी की ओर पेकेट बढ़ा दिया।

"यह हाल कैसे हुआ, कादिर मियाँ।"

"यार; रात फँस गये।"

वहाँ खड़े बाकी के लोग और पुलिस वाले शरीफ लगने वाले इस आदमी को चोर लोगों के साथ इस आत्मीयता से बात करते देखकर परेशान से हो रहे थे!

"अब क्या इरादा है?"

कादिर ने लम्बा कश खींचकर कहा—"अभी तो बहुत दिनों तक अपना इरादा काम नहीं आने वाला है।"

"मेरी मानो कादिर मियाँ, अब भी वक्त है, राहें बदल दो।"

"यार, मैं भी सोच रहा हूँ।"

"पट्ठे ने समोसों का हिसाब चुका ही दिया।" अब्दुल बीच में बोल पड़ा। "खाये-पीये का हिसाब कहाँ चुकता है बड़े भाई।"

अब्दुल को जवाब देकर रमेश ने कादिर से कहा—"अच्छा कादिर मियाँ, चलूँ; जरा काम पर पहुँचना है। कुदरत ने साथ दिया तो फिर मिलेंगे।"

"काम मिल गया ?"

"हाँ, मिल गया है।"

"मालिक का शुक्र है।"

"अच्छा!" तीनों की तरफ देखकर रमेश ने विदा ली और अपने स्टोर की तरफ बढ़ गया। वह बरान्डे से होकर गुज़र रहा था तो सामने से उसे एक नर्स आती दिखाई दी जो उसकी तरफ देखकर मुस्करा रही थी। पास आकर वह बोली—"हैलो! कैसा है।"

"ठीक है।" कहकर रमेश आगे बढ़ जाना चाहता था, मगर ओलेन्डा नाम की यह ईसाई नर्स ठहर कर कुछ कहना चाहती थी। वह कहने लगी—"क्या मिस्टर रमेश कुमार! आपको तो बात करने का भी टाइम नहीं है।"

"ऐसा कुछ नहीं, कहिये क्या बात है।"

"क्या कहूँ, मम्मी बहुत सिरियस है, डाक्टर पुरोहित ने कहा है कि तुम्हारी मम्मी दवा या इन्जेक्शन से ठीक नहीं होगा, उसे दूध, फल और मेवा खिलाओ, टॉनिक खिलाओ। टॉनिक की चार बोतल तो डाक्टर खन्ना ने हमको दिया, पर फल और मेवा तो आपके स्टोर में है मिस्टर रमेश।"

"यस सिस्टर! फल और मेवा स्टोर में है, मगर मेरे स्टोर में नहीं, अस्पताल के स्टोर में है, जिस पर मेरा कोई हक नहीं।"

नर्स ओलेन्डा ने एक विद्रूप सी हँसी हँसकर कहा—"क्या बात करते हैं आप? अस्पताल आपका, स्टोर आपका, फल मेवा सब कुछ आपका। मम्मी

वहुत वीक हो गई है, उसे फलों की सख्त जरूरत है, प्लीज कुछ मेवा और सेव दीजिये न आज।"

कहकर नर्स ने प्यार भरी नज़र से रमेश की तरफ देखा। नर्स ओलेन्डा जवान भी थी और खूवसूरत भी। वड़ी-वड़ी और प्यारी आँखों से उसने जिस ढंग से रमेश को देखा उसमें एक फिसलन थी, जहाँ साधारण चरित्र का आदमी फिसल कर धड़ाम से गिर सकता था, मगर रमेश के गिरने के लिये अवसर ही नहीं था, कारण कि फिसलन की तरफ वढ़ना उसकी फितरत ही नहीं थी।

"सॉरी मेडम! स्टोर से मैं कुछ नहीं दे सकूंगा। हाँ आपकी मम्मीं मेरी भी मम्मी जैसी ही हैं, मुझे ले चलिये किसी दिन उनके पास। एक वेटे की शक्ल में मैं उसके लिये फल और मेवा ···· ।"

ओलेन्डा ने उसकी वात पूरी नहीं होने दी। उसकी आँखों में तैरता कृत्रिम प्यार भाप वन कर उड़ चुका था। अव वहाँ प्यार का पानी नहीं, उपेक्षा के अंगारे धधक उठे थे। रूखे स्वर में वह वोली—"तुम क्या हमको भिखारी समझता है? हम वाज़ार से नहीं खरीद सकता! मेहनत करता है, कमाता है, अपनी माँ के लिये क्या फल नहीं ला सकता। हम समझा था कि फ्रेन्ड के माफिक तुम कुछ हेल्प करेगा, मगर तुम तो वड़ी-वड़ी वातें करता है। जाओ, आगे से तुमको फल के वास्ते नहीं वोलेगा।"

अपनी वात खत्म करके नर्स ओलेन्डा सेन्डल की खट सट-सट खट आवाज़ के साथ आगे वढ़ गई। रमेश उसके जाना देखता रहा। स्वार्थ पूरा न होने पर आपसे तुम पर आना भी उसने देखा। वह स्टोर की तरफ मुड़ा ही था तो चपरासी हरनाम ने आकर उससे कहा—"वड़े साहव ने आपको वुलाया है।"

रमेश वड़े साहव यानि सुपरिनटेन्डेन्ट श्री चौधरी के ऑफिस की तरफ चल दिया। जव वह उनके ऑफिस में पहुँचा तो वे अकेले ही वहाँ वैठे थे। उन्हें अभिवादन कर वह कुर्सी के पास वैठ गया।

"वैठ जाओ।"

रमेश कुर्सी पर वैठ गया।

"काम कैसा चल रहा है?"

"ठीक है सर।"

"हाऊ इज़ योर मदर नाउ।"

"पहिले से ठीक हैं।"

"होना भी चाहिये। जवान वेटे की बेकारी माँ के लिए बीमारी का कारण होता है। अब तुम्हें नौकरी मिल गई है, अच्छी नौकरी, किसी भी माँ के लिये यह खुशी की बात हो सकती है। सच तो यह है कि बीमारी शरीर से ज़्यादा मन की होती है। मन सुखी रहे तो शरीर भी ठीक रहता है। मन को चिन्ताएँ हों तो शरीर भी बीमार हो जाता है। क्यों, ठीक है न?"

"जी हाँ।"

"हाँ, तुम्हारे क्वाटर के लिये इस महीने के आखिर तक इन्तज़ाम हो जायगा। दो कमरे हैं, हॉल है, गैलरी है, बाथरूम वगैरा भी अन्दर ही है। देखे हैं तुमने क्वाटर?"

"जी नहीं।"

"तो आज घर जाने से पहिले देखते जाना। अच्छी नौकरी मिलने के बाद अब क्वाटर मिल रहा है, साल छः महीने में तनखाह भी बढ़ जायेगी। घर जाकर यह खुश खबरी माँ को सुनाना ताकि उनकी चिन्ताएँ कम हों और तबियत भी सुधरे।"

जवाब में रमेश तनिक मुस्कराकर कृतज्ञता के भार से दबते हुए कहने लगा—"यह सब आपकी कृपा है।" "मेरी कृपा नहीं, तुम्हारी योग्यता, मेहनत और ईमानदारी है। हाँ एक बात मैं तुम से कहना चाहता हूँ।"

"कहिये।"

"सुनने में आया है कि स्टॉफ के लोगों के साथ तुम कुछ रूखा व्यवहार करते हो।"

रमेश कहना चाहता था—नहीं तो, मगर कह नहीं सका। वाणी को संयत रखते हुए उसने कहा—"ऐसी तो कोई बात नहीं। मैंने तो किसी को कुछ नहीं कहा। कुछ लोग फल और मेवे माँगने चले आते हैं। मरीजों के फल भला मैं उन्हें कैसे बाँट दूँ।"

रमेश के भोले भाव और जवाब पर चौधरी साहब हँस पड़े। कुर्सी पर

घूमते हुए उन्होंने कहा—"तुम्हारी ईमानदारी और सिद्धान्त की मैं कद्र करता हूँ, मगर वक्त की आवाज का सुनना भी बहुत जरूरी है।"

रमेश का चेहरा प्रश्नवाचक बन गया।

चौधरी साहब कहने लगे—"रमेश कुमार, तुम अभी जवान हो। नया खून है, जोश है इसलिये ईमानदारी और सिद्धान्तों की बातें जोर-शोर से कर लेते हो। हम भी ईमानदारी के कायल हैं, मगर हमारे समाज और जिन्दगी का ढर्रा कुछ इस किस्म के ताने-बाने से जुड़ा हुआ है कि अपने साथ के आदमियों को नाराज करके हम आगे नहीं बढ़ सकते। यहाँ सब एक-दूसरे के काम आते हैं। आज अगर मेरा बच्चा बीमार हो जाये तो मैं किसी भी डाक्टर को अपने घर ले जा सकता हूँ, किसी भी नर्स को इन्जेक्शन देने के लिये रोज घर पर बुला सकता हूँ। सभी खुशी-खुशी आयेंगे। क्यों ? क्योंकि एक-दूसरे के लिये सहयोग की भावना है। तुम आज चाहो तो अस्पताल के फर्स्ट क्लास रूम में अपनी माँ को रख सकते हो। तुम अपनी माँ के लिये फल, मेवे, दूध जो कुछ भी ले जाओ तो कोई कुछ बोलने वाला नहीं, क्योंकि सभी एक-दूसरे को फायदा पहुँचाने में यकीन रखते हैं।"

"मगर सर, बीमार मरीजों के हिस्से की चीज इस तरह लेना तो अच्छी बात नहीं।"

"अच्छी और बुरी बातों की परिभाषाएँ बदल रही हैं। तुम भी बदलो और इन नई परिभाषाओं को स्वीकार कर लो।"

रमेश की आँखों के सामने माँ का चेहरा ऊभर आया। शीला और मास्टर जी भी उसके मानस-पटल पर सजीव हो उठे। भविष्य का सुनहरा सपना उसे हवा में झूलता नजर आने लगा। मुनिश कुमार गुप्ता जो भौंडा पत्थर था, अब एक सुन्दर, आकर्षक और मधुर वाणी में बोलती मूर्ति बनकर सुपरेन्टेन्डेन्ट चौधरी के रूप में उसके सामने फिर से आ पड़ा था। गले का थूक हलक के नीचे उतार कर उसने कुछ कहने की कोशिश की, लेकिन चौधरी फिर बोल पड़े—"देखो भाई रमेश कुमार, आदर्श और सिद्धान्तों से कहानी, कविता और नाटक लिखे जा सकते हैं, इतिहास के पृष्ठ भरे जा सकते हैं, सभा-समितियों में

मंच पर खड़े होकर भाषण दिये जा सकते हैं, मगर जीवन नहीं चलाया जा सकता।"

उनकी बात खत्म होने तक डाक्टर खन्ना वहाँ आ पहुँचे। चौधरी ने रमेश से कहा—"अच्छा स्टोर में जाओ, बाकी बातें फिर होगीं।"

रमेश उठ कर चुपचाप चल दिया।

११

स्टोर का सभी सामान चेक करने के बाद रमेश रजिस्टर लेकर बैठा ही था कि शीला उसका खाना लेकर आ पहुँची। खाने की थैली मेज़ पर रखकर शीला चलने के लिये तैयार हुई तो रमेश ने कहा—"बैठो न।"

"क्या फायदा है यहाँ बैठकर मीठे-मीठे मेवों की मीठी-मीठी सुगन्ध नाक में चढ़ती है, मगर कुछ खा नहीं सकते।"

"फिर शुरू हो गई तुम।"

"सच कह रही हूँ।"

"पता है यह सच और ये फल-मेवे काले बादल बनकर मडरा रहे हैं, मेरी इस नौकरी पर।"

"क्या फिर कुछ नई बात हुई।"

"हुई नहीं, पर हो जायगी ऐसा लगता है।"

"हुआ क्या?"

"अस्पताल के भंगी से लेकर सीविल सर्जन तक गरीब मरीजों के इन फल और मेवों पर नज़र रखते हैं। आज तक ये लोग ही सब कुछ खाते आये हैं। पहिले वाला स्टोर कीपर और इन्चार्ज रजिस्टर में नाम तो गरीब मरीजों का ही दर्ज करता था, मगर माल पहुँचता था डाक्टर के घरों पर। ये लोग चाहते हैं, मैं भी ऐसा ही करूँ, पर मुझ से यह होगा नहीं।"

"पर आज की बात बताओ ।"

"आज सुपरेन्टेन्डेन्ट ने बुलाया और इशारे में कहा कि मुझे सब के साथ मिलकर चलना चाहिये, मतलब कि जो कोई भी फल-मेवे लेने आये उसे उसकी मर्जी के मुताबिक देता रहूँ ।"

"जब तुम्हारा ऑफिसर कहता है, तो तुम एतराज क्यों करते हो ।"

"लिखकर दे दो तो मुझे क्या एतराज हो सकता है । इस माल में मेरे घर का क्या जाता है । पर रजिस्टर मुझे लिखना पड़ता है । झूठे और गलत मरीजों के नाम लिखकर उसके नीचे दस्तखत मेरे हों और फल-मेवे ये लोग खा जायें, ऐसा नहीं हो सकता ।"

"तो अब क्या होगा ?"

"क्या बताऊँ क्या होगा, मगर लगता है कुछ अच्छा नहीं होगा ।"

शीला चिन्तित होकर कहने लगी—"देखो, इस बार कुछ गड़बड़ मत करना । पिताजी बड़ी मुश्किल से वापिस राजी हुए हैं । उन्हें तुम्हारी तरफ से विश्वास हुआ है कि ढाई सौ रुपये की नौकरी और क्वाटर मिला है, ऐसा आदमी उनकी लड़की को खुश रख सकेगा । बनी-बनाई बात बिगड़ने न पाये ।"

"बात न बिगड़े इसकी एक ही तरकीब है ।

"क्या ?"

"तुम माँ को मना लो ।"

"किस बात के लिये ?"

"ईमानदारी का पढ़ाया हुआ पाठ भुला दे और मेरे बन्धन काट दे ।"

"उससे क्या होगा ?"

"मैं बेईमानी पर उतारू हो जाऊँगा और सभी के साथ मिलकर चलूँगा । माँ के लिये खूब फल और मेवे घर पर लाया करूँगा । शादी के बाद जब हम लोग यहीं के क्वाटर में रहेंगे तो तुम्हारे लिये भी टॉनिक, ताकत की दूसरी दवाएँ मुफ्त और खूब लाया करूँगा । जब तुम्हारे बच्चे होंगे तो तुम्हें यहाँ फर्स्ट क्लास कमरे में ठाट-बाट से रक्खा जायगा । तुम्हारे बच्चों को......"

शीला ने बात काट दी—"अच्छा-अच्छा ! अब ज्यादा बको मत !"

"तुमने चाबी घुमाई तो मुँह का ताला खुल गया।"

"फालतू बातें छोड़ो, यह बताओ कि अब होगा क्या, कैसे बात संभालोगे।"

"मेरी समझ में कुछ नहीं आता। बस मुझे तो आसार बिगड़े हुए नज़र आते हैं।"

शीला उदास होकर बोली—"पाँच सात दिन बहुत अच्छे गये थे, तुमने फिर घबराहट पैदा कर दी।"

"शीला, अगर तुम रूठो नहीं, तो एक बात कहूँ?"

"कहो।"

"देखो माँ को पढ़ाया हुआ पाठ मेरी जिन्दगी और खून में इस तरह घुल-मिल गया है कि अब मैं उसे भुलाना चाहूँ तो भी नहीं भुला सकता।"

"तो?"

"मतलब यह कि बेईमानी का रास्ता मुझ से चला नहीं जायगा।"

शीला तुनुक कर बोली—"मैंने तुम से कब कहा है कि तुम बेईमानी के रास्ते पर चलो।"

"पहिले मेरी पूरी बात सुनो।"

"कहो?"

"ईमानदारी के रास्ते पर चलकर मैं जल्दी मंजिल पर पहुँचने में सफल नहीं हो सकूँगा। क्योंकि यह रास्ता लम्बा, कँटीला और पथरीला है। ठीक है?"

"हाँ ठीक है।"

"तुम भी कभी नहीं चाहोगी कि मैं ईमानदारी का पथरीला रास्ता छोड़कर बेईमानी का आरामदेह रास्ता पकड़ूँ। ठीक है?"

"बिल्कुल ठीक, अब सवाल यह उठता है कि लम्बा रास्ता तय करने तक तुम्हारे पिताजी तो मेरे लिये ठहरेंगे नहीं।"

शीला चिढ़कर बोली—"वकीलों की तरह घुमावदार बातें क्या करते हो, सीधी-सीधी बात करो, क्या कहना चाहते हो!"

गम्भीर होकर रमेश ने कहा—"शीला, तुम मुझे भूल जाओ।"

शीला अवाक् रह गई। प्रकृतिस्थ होकर बड़ी मुश्किल से बोली—"बस, यही एक हल सूझा।"

"भुलाये बिना रास्ता नहीं।"

"भुलाना वश की बात है।

"पर भुलाना पड़ेगा, भुलाना चाहिये।" कठोर बनकर रमेश कहने लगा।

"तुम मुझे भुला सकोगे ?"

रमेश से जवाब देते नहीं बन पड़ा।

"बोलो जवाब दो, तुम मुझे भुला सकोगे ?"

रमेश चुप।

शीला भावातिरेक में बहकर बोली—"अब बोलते क्यों नहीं, जो मुश्किल काम तुम खुद नहीं कर सकते वह मुझ से करवाना चाहते हो।"

शीला आंसुओं के कगांरे पर आकर ठहर गई।

"तो अब तुम्हीं बताओ शीलू, मैं क्या करूँ।"

"तुम्हें क्या करना है, वह मुझे नहीं मालूम। मुझे क्या करना है, वह मुझे मालूम है।"

"क्या करना है तुम्हें ?"

"यही कि पिताजी ने मुझे तंग किया या और कहीं बात चलाई तो मैं कुएं या तालाब में छलांग लगा लूंगी।"

रमेश घबराकर बोला—"पागल मत बनो, समझ से काम लो।"

"सब कुछ मैं ही करूँ, तुम कुछ मत करो।"

रमेश कुछ कहता, मगर तभी चपरासी हरनाम हाथ में प्लास्टिक की खूब सूरत सी थैली लेकर वहाँ आ पहुंचा और बोला—"खन्ना साहब ने कहा है कि दस अच्छे से सेब छाँट कर थैली में भर दो।"

रमेश तमतमा गया। उसने कहा—"खन्ना साहब से जाकर कह दो कि खुद आकर अपने हाथ से ले लें, मैं नहीं दूंगा।"

"हरनाम चपरासी सहम गया। धीरे-धीरे उसने कहा—"और चौधरी साहब ने अंजीर भी मँगवाई हैं।"

रमेश लगभग चीखते हुए बोला—"उनसे भी कह दो कि आकर डिब्बा का डिब्बा ले जाँय, मेरी जान को क्यों मुसीबत में डाला है।"

हरनाम चुपचाप वहाँ से चला गया। रमेश ने शीला से कहा—"देखा तुमने! यह हाल है! अब बोलो, कैसे जिन्दे रहें इस दुनिया में। कैसे संभालूँ बात को, यहाँ तो अपना ईमान सँभालना मुश्किल हो गया है। अच्छा शीलू, तुम जाओ कॉलेज, आज बिजली टूटने वाली है। देखो क्या होता है।"

शीला संवेदनापूर्ण दृष्टि से देखते हुए बोली—"सुनो, जहाँ तक हो सके, बात बनाये रखने की कोशिश करना।"

"समझता हूँ, शीला, मेरी आँखों के सामने तुम, माँ, भविष्य सभी हरवक्त मौजूद रहते हो।"

शीला भारी-सा मन लिये चली गई। रमेश सामने मेज पर फैले रजिस्टर समटने लगा। अभी उसने अपने खाने की थैली उठाई ही थी कि दरवाजे पर वह मेहतरानी आ खड़ी हुई। वह हाथ नचाते हुए कहने लगी—"क्यों रे बाबू, बच्चे के लिये एक-आध सेब देने में तेरी ईमानदारी में फर्क आता है और यहाँ अस्पताल में स्टोर के भीतर छोकरियों को बुलाकर घंटों प्यार की बातें करता है तो अस्पताल की शान में फर्क नहीं पड़ता। वाह रे वाह! ईमानदारी के भगत!"

रमेश ने देखा, सुना और जाना कि मेहतरानी तू-तड़ाक करके बेअदबी पर ही नहीं उतरी है, बल्कि गलत ढंग से गलत इल्ज़ाम भी लगा रही है। आँखें तरेर कर उसने कहा—"तेरी यह मजाल कि तू अपनी औकात से बाहर आकर बात करे।"

"अरे जा जा! तू क्या कर लेगा।"

"ठहर बताता हूँ।"

रमेश ने मेज की दराज से कागज़ निकाला और जेब से पैन निकाल कर मेहतरानी के खिलाफ शिकायत-पत्र लिखने बैठ गया।

"मेरी शिकायत लिखकर देगा? ठहर मैं भी तेरी शिकायत करती हूँ।"

और वह वहाँ से चली गई। रमेश लिखने लगा तो स्टॉफ के आदमी स्टोर

से दवाइयों और जरूरत की दूसरी चीजें लेने-देने आते रहे। इस तरह उसका शिकायती-पत्र खत्म होते-होते बहुत देर लग गई। जब वह शिकायती-पत्र लेकर स्टोर को ताला लगाने लगा तो डाक्टर वासुदेव अपने असिस्टेंट को लेकर आ पहुँचे। उन्हें कुछ मिक्शचर और मल्हम लेना था। रमेश ने उन्हें वहाँ बैठाया और दो मिनट में वापिस आने की इजाजत लेकर चल दिया। वह सीधा सुपरेन्टेन्डेन्ट के ऑफिस की तरफ लपका। ऑफिस के अन्दर जाकर उसने शिकायती-पत्र चौधरी साहब के सामने मेज पर रखते हुए कहा—"सर, वह मेहतरानी बहुत ही बे अदबी और बदतमीजी से पेश आई है।"

चौधरी ने शिकायती-पत्र उठाया और पढ़ने लगे। उनकी आँखों में एक प्रकार का रोष मिश्रित अहम तैर रहा था, जिसमें रमेश को डुबाने की तैयारी थी। पत्र पढ़ने के बाद अपनी आराम कुर्सी पर घूमते हुए उन्होंने कहा—"हूँ... ऊँ ...... तो मेहतरानी ने तुम्हारी बेइज्जती की है?"

"जी हाँ।"

"मगर उसकी शिकायत यह है कि तुमने उसकी बेइज्जती की है, उसे छेड़ा है।"

रमेश उछल पड़ा—"नहीं सर! गलत है, बिल्कुल गलत! एक दम गलत। मैंने उसे कभी नहीं छेड़ा, मैं उसे क्यों छेड़ूंगा।"

"चीखो मत, आहिस्ता बात करो।" चौधरी ने डाँटा।

रमेश सहम गया। उसे चौधरी के चेहरे और व्यवहार से भविष्य में घटने वाला सत्य साकार होकर दीखने लगा। भीतर का ईमानदार और सत्यपुरुष करवट लेकर उठ खड़ा हुआ। सीना तानकर उसने कहा—"तो आप मुझे बोलने भी नहीं देंगे।"

"हमारे सिर पर चढ़कर बोलोगे। ग़लत बात करते हो, गलत काम करते हो और फिर शरीफ बनने के लिये शिकायत भी करते हो।"

चौधरी ने तमतमाये हुए चेहरे से रमेश की तरफ देखा और फिर घंटी बजाई। चपरासी आया। चौधरी ने उससे कहा—"पारो मेहतरानी को बुलाओ।"

"चपरासी मेहतरानी को बुलाने चला गया।"

"तुम्हारी एक नहीं, कई शिकायतें मेरे पास आई हैं। मैंने तुम्हें समझाने की कोशिश भी की, मगर मेरी बात तुम्हारी समझ में नहीं आई। नर्स से लेकर डाक्टर तक तुमसे नाखुश हैं, तुम्हारी शिकायतें करते हैं। अभी जुम्मे-जुम्मे तुम्हें यहाँ आये आठ दिन भी नहीं हुए हैं!"

"सब झूठ है। सारी शिकायतें झूठी हैं। अगर मैं सभी की माँगें पूरी करता रहता तो मैं बहुत अच्छा आदमी होता।"

"ज्यादा सयाने बनने की कोशिश मत करो, यहाँ कोई तुम्हारा दुश्मन नहीं है।"

"था नहीं, मगर बन गये हैं और अब दुश्मनी निकालेंगे भी।"

चपरासी के साथ पारो मेहतरानी वहाँ आ पहुँची। चौधरी ने उससे पूछा—"क्या मामला है पारो!"

पारो त्रिया चरितर का पूरा तम्बू तानते हुए हाथ जोड़कर बोली—"क्या बताऊँ माई-बाप, मुझे तो बताने को भी शरम आती है!"

"जो कुछ हुआ वह बताओ।" डपट कर चौधरी बोले।

"हुजूर, एक दिन मैं स्टोर में झाड़ू लगाने गई तो इन बाबू ने मेरी तरफ एक सेब बढ़ाते हुए कहा—ले पारो, सेब खा बहुत मीठा है। मैंने मना कर दिया तो इन बाबू ने जबरदस्ती मेरे हाथ में रख दिया। मैं तो सेब रखकर वहाँ से भाग आई। ये बाबू के पास एक जवान छोकरी रोज आती है। ये उसे भी सेब खिलाते हैं।"

"झूठ।" रमेश फूट पड़ा!

"कहने दो उसे।" चौधरी ने डाँटा।

"हुजूर, वह लड़की कहीं कालिज में पढ़ने भी जाती है। वह आती है तो रोज़ उसके हाथ में किताबें होती हैं। एक और भी अपने बच्चे को लेकर आती है, यह बाबू उसे और उसके बच्चे को भी फल और मेवे खिलाते हैं। मैंने, हरनाम जी ने और ओलेन्डा बाई नर्स ने भी बच्चे को सेब खाते हुए देखा है।"

रमेश कुछ कहने के लिये उबला जा रहा था, मगर चौधरी उसे बोलने

का मौका नहीं दे रहे थे। उन्होंने घंटी बजाकर चपरासी को बुलाया और हरनाम व ओलेन्डा को बुला लाने का आदेश दिया।

रमेश ने प्रतिवाद करते हुए कहा—"देखिये सर, मैं ही नहीं, आप भी समझ रहे हैं कि यह सब मेरे खिलाफ एक जबरदस्त षड्यन्त्र है और इसमें सच कहीं भी नहीं है।"

"मुझे अपने साथ मत घसीटो, मैं कुछ नहीं समझ रहा हूँ। मैं तो सिर्फ इतना समझता हूँ कि इतनी भोली-भाली शक्ल वाला आदमी भीतर से इतना मैला कैसे हो सकता है।"

रमेश क्रोध, उत्तेजना और दुःख से लगभग पागल होते हुए बोला—"देखिये मुझ पर झूठे इल्जाम लगाकर मुझे बदनाम किया जा रहा है।"

"क्या पड़ी है किसी को तुम्हारे पर इल्जाम लगाने और बदनाम करने की। लोगों को अपने काम से ही फुरसत नहीं है।"

हरनाम और नर्स ओलेन्डा ने ऑफिस में प्रवेश किया। चौधरी ने पहिले हरनाम से पूछा—"क्यों हरनाम, तुमने स्टोर में किसी लड़की को आते-जाते देखा है?"

"जी हाँ रोज देखता हूँ, आज भी देखा है।"

चौधरी ने अब रमेश से पूछा—"आती है कोई लड़की स्टोर में?"

"मगर वह मेरा खाना लेकर........"

चौधरी ने गरजते हुए कहा—"जितनी बात पूछी जाय सिर्फ उतना ही जवाब दो। आती है कोई लड़की स्टोर में?"

"जी हाँ।"

"एक कोई और औरत और बच्चा भी आता है?"

"जी नहीं।"

"क्यों हरनाम?"

"जी, एक औरत और एक बच्चा मैंने देखा है। बच्चे को सेब खाते हुए भी देखा है।"

पारो मेहतरानी बीच में बोल पड़ी—"मैंने भी देखा है। बच्चा गेलरी में

सेब खाते हुए जा रहा था।"

"और हरनाम आज सुवह क्या देखा तुमने ?"

"आज सुवह तो इन्हें गेलेरी में सिस्टर ओलेन्डा के साथ बातें करते हुए देखा था।"

"क्यों सिस्टर, आज तुमसे सुवह कुछ बातें हुई हैं। चौधरी ने ओलेन्डा से पूछा।

"हाँ सर !"

"क्या बात हुई ?"

"हम को बोलने को शरम आता है सर।"

"फिर भी बोलो।"

"सर, मिस्टर रमेश ने आज गेलेरी में हमको रोककर कहा कि मैं स्टोर में आया करूँ और जो कुछ जरूरत पड़े ले जाया करूँ।"

"ओफ ! कैसे वेईमान लोग इकट्ठे हो गये हैं।" रमेश झल्लाया। चौधरी ने आँखें निकालते हुए गरज कर कहा—"माइन्ड योर लैंगवेज मिस्टर रमेश कुमार। यह तुम्हारा घर नहीं, सरकारी अस्पताल है। समझे ? विना पूछे तुम्हें वीच में बोलने की जरूरत भी क्या है। तुम से जब पूछा जाये तब बोलो।"

चौधरी साहब अब ओलेन्डा की तरफ मुड़कर बोले—"और क्या कहा ?"

"और कहा कि अगर शाम को वक्त हो तो मैं इनके साथ सिनेमा चलूँ। पर मैंने इन्कार कर दिया, सर, फल और मेवे के लिये भी मैंने कह दिया कि हम कमाता है, मेहनत करता है, सब कुछ खुद खरीद सकता है।"

चौधरी ने रमेश की तरफ मुड़कर कहा—"एक नही, दो नहीं, तीन-तीन आदमी तुम्हारे खिलाफ शिकायतें कर रहे हैं। तुम नर्सों को छेड़ते हो, स्टोर का माल लुटाते हो, उन्हे सिनेमा में बुलाते हो, जवान छोकरियों को बुलाकर स्टोर में रोमाँस लड़ाते हो, बाहर के बच्चों को सेब बाँटते हो ! ऐसे गैर जिम्मेदार और निकम्मे आदमियों को स्टोर-कीपर जैसी जिम्मेदार जगह देकर हमने भारी भूल की है। जाओ, स्टोर का चार्ज भूरासिह को सौंपकर, चैकिंग

करवा कर चाबियाँ ले आओ। चाहते तो हम तुम्हें इसी वक्त पुलिस के हवाले कर देते, पर हमें मालूम है कि तुम्हारी माँ बीमार है, उसके दिल को धक्का लगेगा।"

"बहुत खूब सुपरेन्टेन्डेन्ट साहब, बेटे को झूठे इल्जाम लगाकर नौकरी से निकाला गया है यह सुनकर माँ को खुशी होगी! किस किस्म के शुभचिन्तक हैं आप।"

हैड चपरासी भूरासिंह के साथ डाक्टर खन्ना ने वहाँ प्रवेश किया। उनके हाथ में वह थैली थी, जिसमें शीला प्रायः रमेश का खाना लाया करती थी। डाक्टर खन्ना ने वह थैली मेज पर रखते हुए कहा—"चौधरी साहब, यह क्या अन्धेर हो रहा है आपके राज्य में। बेचारे गरीब मरीज कुत्ते की मौत मर जाते हैं और उनके हिस्से के फल मेवे लोग अपने घर ले जाते हैं।"

चौधरी ने थैली को मेज पर उल्ट दिया। उसमें से सेब, अंजीर केले, काजू, मुनक्का वगैरा निकल कर बिखर गये। रमेश ने लपक कर अपनी थैली उठा ली और डाक्टर खन्ना की तरफ मुड़कर कहा—"डाक्टर जैसा ऊँचा पेशा करने वाला इंसान इतना नीचा भी गिर सकता है, यह मैंने कभी नहीं सोचा था। मुझे अपने रास्ते से हटाने के लिये इतने सारे लोगों को इतना बड़ा नाटक और षड्यन्त्र करने की क्या जरूरत थी। चौधरी साहब, आपको पहिले से ही ऐसा आदमी स्टोर में रखना चाहिये था जो आप लोगों के साथ मेल खाता। पाँच-सात दिन तक आप लोगों को मेवे नहीं मिले तो आज आपने मुझे मुजरिम करार देकर अदालत बुला ली, जिसमें आप जैसे आदमी जज हैं और आपके अपने आदमी गवाह हैं।"

"जबान बहुत बड़ी है तुम्हारी" डाक्टर खन्ना ने कहा।

"पर डाक्टर, गुनाह की उम्र ज्यादा बड़ी नहीं होती। सच्चाई आज नहीं तो कल खुलेगी, पर खुलेगी। जमाना जानेगा कि तुम लोग सिर्फ झूठे और बेईमान ही नहीं, गद्दार भी हो। मुल्क और कौम के जबरदस्त गुनाहगार भी हो। जनता कभी तुम्हें माफ नहीं करेगी।"

"जबान संभालो अपनी!" चौधरी गरज कर बोला।

झूठे इल्जाम, क्रोध, आक्रोश और उत्तेजना के भयंकर ताप ने रमेश को झुलसा दिया था और अब तक वह झुलस कर राख बन चुका था। ठंडी राख ! ठंडे स्वर में उसने कहा—"क्या बात है आपकी ! आप लोग अपना ईमान, धर्म और कर्म नहीं संभाल सकते और मुझे जबान संभालने को कहते हो !"

"चौधरी साहब, यह तो बेशर्म किस्म का आदमी मालूम होता है ! रंगे हाथों पकड़ा गया है और अब चोरी और सीनाजोरी भी कर रहा है।" डा० खन्ना ने कहा।

व्यंगात्मक मुस्कराहट से रमेश ने कहा—" जी हाँ, आप पाँचों शर्म और हया के पाँच पाँडव हैं और पाँचों यहाँ गड़े हुए हैं। चोरी और सीनाज़ोरी वाली बात भी आपने गलत नहीं कही है, बिल्कुल ठीक ही कही है। आप पाँचों शर्मदार मेरी एक बात जरूर सुन लें। बेईमानी करके जो फल और मेवे आप अपने बीवी-बच्चों को खिलाते हैं, उससे कुछ देर के लिए उनका मुँह मीठा जरूर होता होगा, मगर आप इस सच्चाई से आगाह नहीं हैं कि उस मिठास के साथ एक ज़बरदस्त कड़ुवाहट जिन्दगी भर के लिए खून में घुल जाती है। बच्चों ने पिता को बेईमानी करके फल लाते देखा, खिलाते देखा और खाया भी तो यही काम ये बच्चे बड़े होकर अपने बच्चों के लिये करेंगे। इस तरह आप लोग अपने बच्चों के खून में बेईमानी घोलकर उन्हें बेईमान बनाने की ट्रेनिंग और शिक्षा दे रहे हैं, यानि कि आने वाली पीढ़ी को बेईमान बनाने में लगे हुए हैं।"

रमेश उत्तेजित होता गया। उसकी वाणी से शोले निकलने लगे। वह कहता गया—"यानि कि आप कौम का इतिहास बनाने वाली नई पीढ़ी को इस लायक नहीं रहने देना चाहते कि वह इतिहास बना सके। यानि कि आप लोग मुल्क के, समाज के, नई पीढ़ी और इतिहास के दुश्मन हैं। यूँ भी कहा जा सकता है कि आप लोग गद्दार हैं, देश के दुश्मन, और ऐसे गद्दारों को जो कौम की खूबसूरत निशानियों को बदसूरत बनाकर उन्हें मिटाने में लगे हुए हैं, टुकड़े करके चीलों को फेंक देना चाहिये।"

रमेश इतना अधिक उत्तेजित उग्र और भयंकर हो गया था कि किसी को प्रतिवाद करने या कुछ बोलने का साहस नहीं हुआ। सभी चुप रहे। डर रहे थे कि वह कहीं हाथ न उठा बैठे। पर वह अपनी बात खत्म करके तेजी से बाहर निकल गया। उसके जाने पर पाँचों ने चैन का साँस लिया।

१२

रमेश जब अस्पताल के सदर दरवाजे से बाहर निकला तो सोचने लगा कि कहाँ जाय। भरी दोपहर थी। हाथ में थैली भी थी, जिसमें उसका खाना आया करता था। थैली में अब भी खाना पड़ा था। उत्तेजना की आग पर पानी डालने के इरादे से उसने विचारों को मोड़ दिया। क्रोध, भूख को मारता है, मगर उसने क्रोध को मारकर भूख को जीवित रखने का निश्चय किया।

सड़क पर दायें पार्श्व की ओर बढ़कर वह पास ही स्थित एक जनप्रिय होटल 'वेल्को' में जा पहुँचा। इस होटल में प्रायः अच्छे और खाते-पीते लोग ही आते थे। यहाँ आने वाले ग्राहक प्रायः बैरे को आठ आने से लेकर रुपये तक की बख्शीस दिया करते थे। लेकिन, होटल का अवसर वादी मालिक होटल के आस-पास वाले साधारण आदमियों को खुश रखने के लिए उनका भी उसी तरह मुस्कराकर स्वागत करता था, जैसे बड़े लोगों का। अस्पताल के बहुत से साधारण कर्मचारी अपना खाना लेकर होटल में आकर बैठते और सिर्फ सब्जी मँगाकर अपने खाने के साथ खाते, लेकिन होटल मालिक ने कभी आपत्ति नहीं की, कारण कि अस्पताल के कर्मचारियों से तथा पदाधिकारी से उसे भी अनेक अप्रत्यक्ष लाभ थे।

रमेश होटल के एक कोने की मेज पर जा बैठा। बगल की दूसरी मेज पर तीन अपटुडेट नौजवान दो खबसूरत लड़कियों के साथ बैठे थे। इन पाँचों ने रमेश का आना देखा। पाँचों की दसों आँखें रमेश के ऊपर जा चिपकीं।

रमेश को भी लगा कि उसे देखा जा रहा है। उसे यह भी लगा कि चेहरे कुछ जाने पहिचाने हैं। उसने भी एक निर्भीक दृष्टि उन लोगों पर डाली। लड़कियों ने तो तुरन्त दृष्टि बचा ली, मगर उन तीनों ने उसकी ओर टकटकी लगाई फिर आँखें हटा लीं। रमेश को याद आने लगा कि शुरू-शुरू में साथ पढ़े हुए सहपाठी हैं, जो अब वक्त और हालात के साथ दूर हो गये। एक तो मशहूर इन्जिनीयर गुप्ता का बेटा था, दूसरा डाक्टर हरवंश का लड़का था जो अब खुद डाक्टर बनने की तैयारियाँ कर रहा था और तीसरा कोई अनजान ही था।

रमेश की टेबल पर बैरा आ पहुँचा। रमेश ने उसे सिर्फ सब्जी का आर्डर दिया। बगल वाले पाँचों प्राणी अपनी शान-शौकत के मुताबिक सेन्डविच और पेटिस खा रहे थे। उनकी बातों का दौर भी उनकी शान की तरह रंगीन और शानदार था। उनमें से एक कह रहा था—"तो रीटा बर्थडे पर किसे-किसे बुला रही हो ?"

"बस, पाँच और पाँच दस !"

"सिर्फ दस !"

"ज्यादा भीड़ भड़क्का मुझे अच्छा नहीं लगता। आलतू-फालतू, कड़के-फड़के सभी इकट्ठे हो जाते हैं।"

"तो इस बार चुनिन्दा और खास हस्तियों को बुलाया जा रहा है ?"

"हाँ।"

रमेश इन लोगों की बातें, न चाहते हुए भी, साफ-साफ सुन रहा था। उसकी सब्जी आ चुकी थी और अपनी थैली से रोटियों की पुड़िया मेज पर निकाल कर वह रोटी खाने में लग चुका था। पड़ौस की मेज़ पर इस तरह कागज की पुड़िया में रोटी के साथ सब्जी खाते देखकर इन पाँचों ने उधर देखा फिर एक-दूसरे की तरफ आश्चर्य से देखकर दुबारा उसकी तरफ ऐसे घृणा व तिरस्कार भाव से देखा जैसे लोग मन्दिर के सामने बैठकर शराब पीते हुए शराबी को देखते हैं। रमेश ने इन पाँचों की आँखों में अपने लिए उत्पन्न हुए भाव को पढ़ लिया, मगर वह चुपचाप खाने में लगा रहा। गम खाने के तुरंत

वाद यदि आदमी को खाना खाने की जरूरत आ पड़े, तो वह अत्यधिक शांत और धैर्यशील हो जाता है।

"अच्छा वाकी के पांचों लोग कौन हैं?"

"उस दिन वताया तो था, एक तो अपने फ्रेन्ड एसो।शियेसन के चेयरमेन मिस्टर मल्होत्रा, दूसरे वम्वई से आये हुए एक फिल्मी गीतकार विकल जी, तीसरे सेठ अमोलक चन्द जी जो एक फिल्म प्रोड्यूसर को फाइनेंस कर रहे हैं चौथे अपने एम० एल० ए० साहव और पांचवें को तो तुम सभी जानते हो।" खिलखिला कर रीटा नाम की लड़की ने कहा।

उसकी खिलखिलाहट में प्लेट के टकराने से उत्पन्न होने वाले कांटे छुरी के संगीत के साथ सभी ने खिलखिलाकर साथ दिया।

रीटा के साथ वाली लड़की वोल पड़ी– डोली, लास्ट टाइम तो रीटा की सालगिरह दस महीने वाद आई थी, मगर इस वार तो आठ महीने वाद ही आ पहुँची।"

रमेश यह वात सुनकर कुछ चौकन्ना हुआ। इस चौंकने में उसका हाथ रुका, उसने मुड़कर वगल की मेज की तरफ देखा। पांचों अपने हँसी ठठ्ठे में उलझे हुए थे। रीटा साथ वाली लड़की को जवाव दे रही थी—"यू नॉटी गर्ल! समझती क्यों नहीं।"

तीनों में से एक वोल पड़ा—"करीव दो साल पहिले हमने रीटा की वर्थडे पार्टी एन्जोय की थी। उसके दस महिने वाद ही वम्वई का फिल्म डायरेक्टर श्याम मुकर्जी हमारे शहर में आ टपका। वेचारी रीटा को उसे इनवाइट करने के लिये दस महिने वाद ही वर्थडे मनानी पड़ी थी। उस चक्कर मे असली वर्थडे भी नहीं मनाई जा सकी और इस वार यह फिल्मी गीतकार विकल जी आ पहुँचे हैं।"

दूसरे ने कहा—"रीटा जी जान से वम्वई पहुँचने की कोशिश में लगी हुई है, भगवान करे इसे कामयावी हासिल हो।"

"पर विकल जी इस मामले में क्या कर सकेंगे?" दूसरी लड़की ने पूछा।

"विकल जी की वम्वई में वहुत पहुँच है। वड़े-वड़े प्रोडयूसर डायरेक्टर उनके आगे-पीछे घूमते हैं। रीटा के बारे में अगर थोड़ा कुछ भी कह दें तो छः महीने में ही देखोगे कि रीटा छः फिल्मों में हीरोइन आ रही है।" तीनों में से एक ने कहा।

कुल मिलाकर रमेश की समझ में उनकी वातों से इतना ही पता चला कि रीटा फिल्मों में प्रवेश लेने के लिए वम्वई से आने वाले किसी भी फिल्मी हस्ती से मेल-मिलाप वढ़ाने और हीरोइन वनने में कामयाव होने के लिए उसे अपने घर पार्टी पर बुलाती है और पार्टी वतौर सालगिरह मनाई जाती है। सालगिरह के वक्त वम्वई से फिल्मी हस्तियों को बुला सकना मुश्किल काम है, इसलिये फिल्मी लोगों के वहाँ आने पर सालगिरह मनाने के आसान काम को ही चुना गया।

रमेश अव तक खाना खा चुका था। हाथ धोने के लिये वह वॉश वेसीन की तरफ गया। उसके उठने पर इन पाँचों की नजरें फिर उठीं। वैरा आया, वह रमेश की टेवल से प्लेट उठाकर चला गया। पाँचों में कुछ फुसफुसाहट हुई। तीनों में से एक नौजवान ने दवी जवान में कुछ कहा इस पर सभी ने एक घृणाभरी दृष्ठि रमेश पर डाली। वह हाथ धोकर वापिस अपनी जगह आ वैठा। उसने फिर देखा कि कनखियों से उसे देखा जा रहा है। इशारे से उसने वैरा को अपने पास बुलाया और अत्यन्त साधारण ढंग से एक सिक्का, जो कि सब्जी की कीमत थी, उसके हाथ पर रख दिया। वेरा सिक्का देने के लिए काउन्टर की तरफ चला गया। रमेश ने देखा कि उसके व्यवहार पर वगल वाले पाँचों के होठों पर तिरस्कारपूर्ण मुस्करातें हैं।

रमेश इन लोगों की तरफ से मुँह फेरकर और विना ध्यान दिये उठकर चलने लगा। तभी उसके कानों ने सुना—"अव तो पोस्टमैन की औलाद भी इस होटल में आने लगी।"

सुनकर रमेश ठिठक गया। उसने कहने वाले की तरफ देखा और उससे पूछा—"क्यों! होटल के वाहर कहीं लिखा हुआ है कि पोस्टमैन की औलाद के लिए प्रवेश वर्जित है?"

रीटा बीच में बोल पड़ी—"यह फर्स्ट ग्रेड का होटल है और फर्स्ट क्लास लोग ही यहाँ आते हैं ! फर्स्ट क्लास जेन्टरी !"

"तो फिर आप यहाँ क्यों आई हैं ?"

"क्या !" रीटा रमेश के प्रश्न पर चौंक पड़ी।

"हाँ, जब यह होटल फर्स्ट क्लास लोगों के लिये है तो आपका यहाँ क्या काम है ? आप यहाँ क्यों आई हैं ?"

"तो क्या मैं थर्ड क्लास हूँ।"

"जी नहीं, थर्ड क्लास लोग इतने बुरे नहीं होते।" पता नहीं आप थर्ड क्लास लोग किसे कहती हैं। अगर आपका मतलब गरीबों से है तो आप यकीन करिये कि गरीब लोग यानि थर्ड क्लास लोग साल में दो बार तो क्या पूरी जिन्दगी में कभी एक बार भी सालगिरह नहीं मनाते हैं।"

"ओ.....! हाऊ रबिश ! सी हाऊ रफ ही इज़ !"

"देखो मिस्टर अपनी औकात से बाहर मत आओ।" तीनों में से एक ने कहा।

"तो तुम्हें औकात से बाहर आने के लिये गवर्नमेंट का कोई लाइसेंस हासिल हो चुका है ?"

"तुम से किसी ने क्या कहा है।"

"पोस्टमैन की औलाद होटल में नहीं आ सकती, किसने कहा।"

"तुम पोस्टमैन के बेटे हो, क्या यह सच नहीं ?"

"अच्छा तो यहाँ बैठकर आप सच की खोज कर रहे हैं ? रमेश उत्तेजित होकर बोला।

दूसरा तनिक घबराकर कहने लगा—"पर तुम्हारे फादर पोस्टमैन थे, यह सच्ची बात है न !"

"बिल्कुल सच है। मेरे फादर पोस्टमैन थे। बाइस साल तक पोस्टमैन रहे हैं। इन बाइस सालों में हमेशा सभी खत वक्त पर और ठिकानेपर पहुँचाये हैं। नाजायज़ फायदा उठाने के लिए कभी वक्त से बेवक्त होकर, फिर हराम की कमाई खाकर बेवक्त से वक्त पर खत बाँटे हों सो बात नहीं। जिन्दगी भर

ईमानदारी से काम किया है।"

"वही तो हम कह रहे हैं कि फादर तुम्हारे पोस्टमैन थे इसमें बुरा मानने की क्या बात है।" तीनों में से एक बोला।

"मैं बुरा नहीं मानता, पर आपको बुरा लगेगा, जब आपको अपने बारे में सच्चाई मालूम होगी। आपके पिता इन्जीनियर थे। गलत नक्शे पास करने के जुर्म में और ठेकेदारों से रिश्वत लेते हुए पकड़े गये थे। सभी अखबारों में यह खबर छपी थी। इतने पर भी यहाँ बैठकर आप गर्व करते हैं और मुझे शर्म करने के लिए कहते है। मैं ईमानदार बाप की ईमानदार औलाद हूँ जबकि तुम बेईमान बाप के बेईमान बेटे हो फिर भी शर्म मैं करूँ और गर्व तुम करोगे वाह!"

रमेश की उत्तेजना तेजी से मोड़ लेती हुई आगे बढ़ने लगी। वह कह रहा था—"और ये डाक्टर साहब के साहबज़ादे जो आपकी बगल में बैठे हैं, इनके पिता जी भी अस्पताल में गुल खिला चुके हैं, पकड़े गये हैं और अस्पताल से निकाले जा चुके हैं। फिर भी इन साहब को गलतफहमी है कि ये फर्स्ट क्लास जाति के लोग हैं।

तीनों ही नौजवान हट्टे-कट्टे थे, मगर रमेश की सच्चाईयों के बाणों से बींधे जा रहे थे। कुछ भी बोलने का साहस तीनों में से कोई भी नहीं कर सका। रमेश ने फिर कहा—"और ये हीरोइन बनने का सपने देखने वाली मिस इन्डिया, जो अपने सपने को साकार करने के लिए इन्सानियत और सच्चाई से इन्कार करती हैं, सालगिरह साल में दो बार मनाती है, अपने आपको फर्स्ट क्लास समझने की भूल किये बैठी है। तुम लोग मुझे थर्ड क्लास समझते हो और अपने आपको फर्स्ट क्लास समझते हो! तुम लोग मुझे शर्म करने के लिये कहते हो, जबकि यह काम तुम्हीं लोगों को करना है! तुम लोग अपने बाप के नाम पर गर्व करते हो, जबकि यह काम मुझे करना है। बुरे काम करके भी तुम गर्व करोगे और अच्छे काम करके मैं शर्म करूँगा। नहीं ऐसा नहीं होगा, शर्म तुम करोगे और गर्व मैं करूँगा। तुम लोग मुझ से आँखें और गर्दन झुकाकर बात करो। तुम अमीर मगर बेईमान बाप की सन्तान हो, मैं एक

गरीव मगर ईमानदार बाप की सन्तान हूँ। मैं सीना तानकर, गर्दन उठाकर और ऊँची आवाज़ में बोल सकता हूँ। समझे!"

रमेश सीना ठोककर बड़ी-बड़ी आँखें करके बोलता चला जा रहा था। उत्तेजना के कारण उसके मुँह से थूक भी उछलने लगा था। होटल में बैठे सभी ग्राहक खाना-पीना छोड़कर इस ओर देख रहे थे। काउन्टर पर बैठा होटल मालिक भी वहाँ आ पहुँचा था। अन्त में रमेश ने चलने की तैयारी करते हुए कहा—"फर्स्ट को थर्ड और थर्ड को फर्स्ट समझने वाले नादान समझदारो, अगर वक्त रहते वक्त की आवाज नहीं सुनी तो वक्त भी तुम्हारी आवाज़ नहीं सुनेगा।" फिर वह तेजी से बाहर निकल गया।

१३

रमेश शाम को घर पहुँचा तो बिल्कुल शान्त था। मुख पर कहीं भी कोई भाव नहीं, जिससे किसी को तनिक भी शंका हो सके। घर के भीतर गया तो माँ के पास शीला प्रश्नवाचक चेहरा लिये बैठी थी। उसने शीला की आँखों में पढ़ा, जहाँ लिखा हुआ था—क्या हुआ ?

माँ के चेहरे से लगता था कि शीला ने उससे कुछ भी नहीं कहा है। पर शीला की दृष्टि मिली तो शीला ने गर्दन और पलकें ऊपर उठा कर आंगिक ढंग से 'क्या हुआ' का प्रश्न पूछा। रमेश धर्म-संकट में फँस गया। वह नौकरी चले जाने के दुखद समाचार को शान्ति और आराम के साथ सुनाना चाहता था। ताकि माँ की तबियत पर उसका असर न पड़े। इधर शीला की उत्सुकता को शान्त करना भी आवश्यक था। उसने माँ की दृष्टि बचाकर हाथ के इशारे से बताया कि छुट्टी हो गई। जानकर शीला का चेहरा उतर गया।

पदचाप सुनकर तीनों का ध्यान दरवाजे की तरफ गया। मास्टर जी मुस्कराते हुए भीतर आये। रमेश को छेड़ते हुए कहने लगे—"अरे भई वक्त

रहते मिठाई खिला दो, कहीं तुम अपने नये क्वाटर में चले गये तो मेरी मिठाई मारी जायेगी।"

पलंग पर बैठी हुई माँ ने सिर का आँचल ठीक करते हुए उनका स्वागत किया और बोली—"आओ मास्टर भैया।"

"आ तो गया भाभी, बस अब मिठाई खिला दो।"

"खाओगे हमारे घर की मिठाई ?"

"अरे भाभी, फिर जकड़ दिया मुझे।"

"तरकीव बताती हूँ मैं। शादी में जब हमारे घर मिठाई भेजो तो उसमें से अपना हिस्सा निकाल लेना।"

शीला, जो माँ की बगल में बैठी थी, चुपचाप उठकर चल दी।

माँ ने पूछा—"अरी कहाँ चल दी तू ?"

"खाना बनाना है।"

"अच्छा ! अच्छा ! बना जाकर खाना।"

शीला चली गई।

मास्टर जी कहने लगे—"देखो भाभी, अच्छा वक्त भी आता है तो चारों तरफ से आता है। आज स्कूल में हेडमास्टर साहब कह रहे थे कि कोई ग्रेजुएट मिले तो ले आओ, एक टीचर की जगह ख़ाली है। पहिले तो सोचा कि अपने रमेश को ही क्यों न रखवा दूँ, फिर ख्याल आया कि रमेश तो अच्छी जगह लग गया है। अच्छी तनखाह है, क्वाटर है, सभी......"

वे अभी अपनी बात खत्म नहीं कर पाये कि रमेश बीच में बोल पड़ा—"उस जगह पर कौन आया है ?"

"अभी तक तो कोई भी नहीं आया, आज ही तो बात उठी थी।"

"तो फिर मुझे वह जगह दिलवा दीजिये।"

"मास्टरी करोगे ?" चौंक कर मास्टर जी ने पूछा।

"जी।"

तनख्वाह सिर्फ डेढ़ सौ रुपये है।"

"मुझे मंजूर है।"

"बावले हुए हो ! ढाई सौ की तनख्वाह, क्वाटर मुफ्त, इलाज और ढेरों

आराम छोड़कर मास्टर की रूखी-सूखी नौकरी करोगे, जिसमें सिर्फ डेढ़ सौ रुपये मिलेंगे।"

"वही अच्छी रहेगी।"

"खाक अच्छी रहेगी! अरे भाभी तुम समझाओ न कुछ।"

मास्टरजी ने माँ की तरफ देखा तो माँ ने मुस्कराकर कहा—"उसे क्या समझाऊँ, समझाने की जरूरत तो तुम्हें है।"

मास्टर जी फिर चौंके।

माँ ने बताया—"भैया वह बार-बार जब मास्टरी की नौकरी के लिये कह रहा है तो तुम उसका मतलब नहीं समझ सके क्या?"

"नहीं तो।"

"मतलब यह है कि अस्पताल की नौकरी नहीं रही। वह छूट चुकी है।"

मास्टर जी तीसरी बार चौंके। उन्होंने रमेश से पूछा—"क्यों भई, क्या यही बात है?"

"जी हाँ, मैं इसीलिये तो आपसे कह रहा हूँ कि अगर वह जगह खाली है, तो मुझे वहाँ रखवा दीजिये।"

मिठाई खाने के लिये बनाया गया मीठा चेहरा खीर में खटाई पड़ने जैसी बात सुनकर खट्टा स्वाद खाने के बाद जैसा हो गया। मास्टर जी के चेहरे पर भाव-ताव का जमघट लगने लगा। चिन्तातुर होकर उन्होंने पूछा—"मगर अस्पताल में हुआ क्या?"

रमेश ने शुरू से आखिर तक सब कुछ कह सुनाया। पूरी बात सुनकर वे बोले—"तो भले आदमी, इतना शरीफ बनने की भी क्या जरूरत है कि दुनिया उठाकर ही फेंक दे। इतने मीठे भी मत बनो कि कोई गप कर जाय और इतने कड़ुवे भी मत बनो कि थू कर दे। नौकरी करने जहाँ भी जाओगे अच्छे-बुरे आदमी मिलेंगे। बल्कि अच्छे कम और बुरे ज्यादा मिलेंगे। मुझे देखो, उम्र पूरी कर दी है नौकरी करते-करते न किसी का लेना न किसी का देना। सभी तरह के आदमी मिलते हैं। जैसा मौका देखा, वैसी बात की और आगे बढ़े। तुम्हारे पिताजी ने भी तो बाईस साल तक नौकरी की है और ईमानदारी से की है। उन्हें कभी भी नौकरी छोड़ने की जरूरत नहीं पड़ी।"

रमेश ने मास्टर जी का लम्बा चौड़ा भाषण सुना तो लम्बी साँस छोड़कर कहने लगा—"आपके और पिताजी के जमाने की बातों में और आज की बातों में बड़ा फर्क हो गया है। ईमानदारी घटी है और बेईमानी बढ़ी है।"

माँ बीच में बोल पड़ी—"क्यों मास्टर भैया, यह बात सच है न कि ईमानदारी घटी है और बेईमानी बढ़ गई है।"

"हाँ भाभी, सच तो है ही।"

"आखिर ऐसे सच का कुछ कारण भी होगा।"

"इस कड़ुए सच का कारण भी बहुत कड़ुआ है।"

"तो भी ?"

"क्या बताऊँ, देखते-देखते और जानते-जानते अक्ल चकरा गई है। सच तो यह है कि देश की आज़ादी के बाद हर घर से गंगा आ गई है। बड़ी-बड़ी कुर्सियाँ निकम्मे और बेईमान आदमियों के हाथ आ लगी हैं। इन लोगों ने अपना ऐसा जाल और ऐसी भूल-भुलैया बना रक्खी है कि कोई भी नेक, शरीफ और ईमानदार आदमी पास आने की हिम्मत ही नहीं कर सकता। गलती से कोई आता भी है तो फँस कर तड़फता रहता है। आज हमारे देश और समाज पर नौकरशाही का खतरा और जहर इतना बढ़ गया है कि इसने अंग्रेजों की हकूमत और ज़ुल्मों को भी भुला दिया है। पच्चीस साल से नौकरशाही के ज़ुल्मों को सहते-सहते देश के भक्त अंग्रेजों के दो सौ सालों के ज़ुल्मों को भूल गये हैं। आज़ादी से पहिले देश भक्त हिन्दुस्तानियों को। उनकी दुश्मन अंग्रेजी हकूमत आमने-सामने दिखाई देती थी, मगर आज़ादी के बाद नौकरशाही का ज़ुल्म ढाने वाले हिन्दुस्तानी, हिन्दुस्तान की राष्ट्रीय प्रेम से पागल जनता के सामने, हिन्दुस्तानी के भेष में ही बहुरुपिये बनकर आते हैं। क्या कुछ कहूँ, भाभी, बड़ी कड़ुवी सच्चाई हैं। देखना, अगर वक्त रहते नौकरशाही, बेईमानी और हरामखोरी का सफाया नहीं हो गया तो देश में भयंकर क्रांति होगी। आज ईमानदार आदमी के लिये ईमानदार बने रहना मुश्किल हो गया है। वह अगर बेईमानी के आगे घुटने टेकने के लिये तैयार नहीं होगा तो जी नहीं सकेगा। बाल बच्चे वाला ईमानदार आखिर में अपनी ईमानदारी को छोड़कर बाल बच्चों के प्यार की खातिर समझौता कर ही लेता

है। परिवार से और ईमानदारी से दोनों से एक साथ प्यार करना, आज की दुनियाँ में वहुत मुश्किल काम हो गया है। आज तो वही आदमी जी सकता ...."

मास्टर जी का भाषण और आगे चलता, मगर माँ ने वीच में वोलकर कहा—"भैया जमाने की वात छोड़कर जरा रामदेखी वात कहो कि रमेश का कसूर क्या है ?"

"भाभी सच पूछो तो नेकी, सच्चाई और ईमानदारी ही रमेश का कसूर है। काली चद्दर पर सफेद सितारे का चमकना उसका दोष है।"

"तुम्हारा मतलव यह है कि रमेश नेक, सच्चा और ईमानदार है।"

"इसमें कहाँ शक है भाभी ?"

"फिर तुम्हें रमेश से क्या शिकायत है ?"

"शिकायत कुछ नहीं, मैं तो सिर्फ इतना ही कहना चाहता हूँ कि अपनी माँ और भावी जीवन का ख्याल रखकर जरा सोच लेना चाहिये और वात को टालने की कोशिश करनी चाहिये।"

"पर भैया, इसके लिये वेईमान वने विना रास्ता नहीं। क्या तुम चाहोगे कि तुम्हारी इकलौती वेटी का पति और तुम्हारा दामाद वेईमानी की तरफ कदम उठाये ?"

मास्टरजी चुप हो गये।

"भैया, मुझे क्या अपना सुख वुरा लगता है। जिस हालत से मैं गुजर रही हूँ, वह तुमसे छिपा हुआ तो नहीं। आज मेरे शरीर को दुःख वीमारी जरूर है, पर मेरे मन को सुख व सन्तोष है। मेरा वेटा वेईमानी के रास्ते पर चलकर मेरा ईलाज करा सकता था, मुझे अच्छी दवाईयाँ भी दे सकता था। मैं अच्छा खाना, अच्छा कपड़ा और अच्छी जिन्दगी का सुख भोग सकती थी। पर तव मुझे शरीर का ही सुख रहता, आत्मा का सुख मेरे हिस्से में न आता। उस वक्त मैं एक वेईमान वेटे की सुखी माँ होती। वेटे की वेईमानी से हासिल किया हुआ सुख मेरी जिन्दगी पर भार वन गया होता। आज मैं एक नेक और ईमानदार वेटे की माँ हूँ। सच कहती हूँ, अपनी वाहरी तकलीफों का

वाल भर भी दुःख मेरे मन पर नहीं। मेरे मन का पूरा सुख और सन्तोष है कि मैं एक ईमानदार वेटे की माँ हूँ। मरने के वाद भी यह सुख मेरे साथ जायेगा। मर कर जब मैं भगवान के सामने जाऊँगी तो वह भी मेरे सम्मान में उठकर खड़ा हो जायेगा और कहेगा कि देखो एक ईमानदार वेटे की माँ और एक ईमानदार पति की बीवी आई है।"

भावातिरेक में माँ की आँखें छलछला आई। उसका गला अवरुद्ध हो गया। रमेश उसके पास आकर उससे लिपट कर वोला—"वस कर माँ, तेरी तबियत ठीक नहीं है। उसकी आँखें भी सजल हो उठीं। मास्टर जी भी अपनी आँख का पानी पोंछें विना उठ खड़े हुए और वोले—"रमेश, कल मेरे साथ स्कूल चलना। मैं हेडमास्टर साहब से मिलवा दूँगा।"

१४

"मास्टर जी नमस्ते!"
"खुश रहो, बच्चा!"
"गुरुदेव, पाठशाला का समय हो गया है।"
"हम सजग हैं, बच्चा।"
"आपकी माता श्रीदिखाई नहीं देती।"
"आज वे तनिक स्वस्थ हैं और मन्दिर गई हैं, वच्चा।"
"अच्छा-अच्छा! वहुत हुआ!! बच्चा-बच्चा क्या लगा रक्खा है।"
"तुमने मास्टर जी और गुरुदेव से क्यों शुरू किया।"
"तुम मास्टर नही हो?"
"तुम्हारा तो मास्टर नहीं हूँ।"
"तो मेरे क्या हो?"
"गुरुदेव······नहीं, गुरुदेव मैं खाली देव हूँ, गुरु नहीं।"
"कौन से देव हो फिर?"

"आधा काम मैंने कर दिया, बाकी का आधा काम तुम खुद कर लो।"

शीला लजाकर बोली—"शर्म नहीं आती, मास्टर होकर ऐसी बातें करते हो।"

रमेश कहने लगा—"आज की तारीख में अब तक की बात में एक भी शब्द मैंने ऐसा नहीं कहा जिसमें मुझे लाज आये और मेरी मास्टरी को कलंक लगे।"

"मास्टर हो न, इसीलिये बातें बनाना तो आना ही है।"

"असल बात यह नहीं है।"

"तो क्या है ?"

"देखो, मास्टर तो मैं सिर्फ पिछले एक-दो महीने से हूँ, असल में मास्टर के रिश्तेदारों से रिश्ता है, उसी का कुछ असर है।"

"अच्छा बाबा ठीक है, अब यह बताओ कि क्या कर रहे हो ?" तंग आकर पीछा छुड़ाते हुए शीला ने कहा।

रमेश स्कूल जाने की तैयारी में परीक्षा के लिये जाँची गई कॉपियों को ठीक करआया। उसने कहा—"जब से तुम आई हो, तब से तुम से बातें कर रहा हूँ। हां, उससे पहिले का जानना चाहती हो तो बोलो।"

शीला खीझ कर बोली—"वकीलों की तरह बहस मत किया करो। मेरा मतलब यही है कि मेरे आने से पहिले जनाब क्या कर रहे थे।"

रमेश भी छेड़ने के मूड़ में था। वह कहने लगा—"अब देखो, फिर वही बात! अपनी बात का मतलब जो कुछ तुमने लगा लिया है, दूसरे के लिये भी हर हालत में उसका वही मतलब नहीं होता। अब मैं साफ, सीधी और सही बात करूँगा तो तुम कहोगी कि वकीलों की तरह बहस करता हूँ। इसलिये जाने दो, इस बात को और आगे बढ़ो। हाँ, तो तुम्हारा सवाल था कि मैं तुम्हारे आने से पहिले क्या कर रहा था। क्यों यही न ?"

शीला खीझ कर भी मुस्करा दी। मुस्कराते हुए उसने कहा—"बच्चों को समझाते हो कि शरारत मत करो और खुद शरारत करने पर उतारू हो। एक जरा-सी बात पूछी, जिसमें कितनी बातें बनानी पड़ रही हैं।"

अब आगे बढ़ो। हाँ, तो मुझे बताना है कि तुम्हारे आने से पहिले मैं क्या कर रहा था। मैं सच कहता हूँ, तुम्हारे आने से पहिले मैं......"

रमेश रुक गया

"रुक क्यों गये, बोलो।"

"क्या बोलूँ, बोलने का फायदा भी क्या! जो बोलूँगा, उस पर तुम विश्वास ही नहीं करोगी।"

"आज बहुत मूड में हो, क्या बात है! अब बोलो भी।"

"शीला, अब तुम मानो या न मानो, तुम्हारे आने से पहिले मैं तुम्हें....."

रमेश फिर रुक गया।

"अब चुप क्यों हो गये?"

"तुम मेरी बात का विश्वास करोगी न?"

"हाँ करूँगी।"

"तो शीला, मैं सच कहता हूँ कि आज मैं तुम्हें याद कर रहा था।" शीला बेबाक हँस पड़ी। उसका खिलखिलाना कम हुआ तो वह बोली—"आज मेरी याद कैसे आई?"

"कैसे आई वह मुझे भी नहीं मालूम, मगर आई।"

"और आज ही आई।"

"यूँ तो पहिले भी कई बार आई है, मगर बात आज की चल रही है और आज में चल रही है, इसीलिये आज की याद का ज्यादा महत्व है।"

शीला कॉलेज जाने के लिये घर से निकली थी। उसके हाथ में किताबें थीं। वह एक स्टूल पर बैठती हुई बोली—"बैठने के लिये भी नहीं कहते हो, खड़े-खड़े मेरे पैर दुखने लगे।"

"मेरे कहने पर ही तुम बैठोगी, अगर ऐसा फायदा होता तो तुम अब भी खड़ी रहतीं। पर तुम तो बैठ गई हो, मेरे कहे बगैर!"

"क्या करूँ, बैठना पड़ा।"

"हाँ-हाँ, ऐसे में अच्छे-अच्छों को बैठना पड़ता है।"

"क्या मतलब?"

"मतलब यह कि जब किसी को मालूम हो जाय कि उसे याद किया जा रहा है या जा रहा था, तो फिर वह यह भी जानना चाहता है कि क्यों, कैसे और किस हिसाब से याद किया गया है। तुम भी जानना चाहोगी कि मैं तुम्हें याद क्यों, कैसे और किस ढंग से कर रहा था। बताऊँ ?"

शीला को फिर हँसी आ गई।

"तुम सोच रही होगी कि मैं तुम्हें इसलिये याद कर रहा था कि हम दोनों किसी बाग-बगीचे में, या नदी के किनारे या फिर किसी नाव में बैठकर कोई मधुर गीत गाते हुए, एक दूसरे की बाहों में बाहें डालकर उछलते कूदते फिरते। तुम यह भी सोच सकती हो कि मैं तुम्हारे साथ किसी प्राचीन खंडहरों के भवन या मन्दिर की ओट में बैठकर सुनहरे भविष्य के मीठे सपने देखने के लिये याद कर रहा था। या फिर माँ के मन्दिर चले जाने पर अकेला होने पर तुम्हारे साथ कुछ मीठी-मीठी गुदगुदाने वाली बातें करने के लिये तुम्हें याद कर रहा था।"

रमेश और आगे कुछ कहता, मगर शीला बोल पड़ी—"तुम एक काम करो।"

"बोलो, अभी कर डालता हूँ।"

"ज्योतिषि का काम धन्धा शुरू कर दो।"

रमेश ने तीखी-मीठी दृष्टि से उसे देखकर पूछा—"तुम्हें अपना भविष्य पूछना है ?"

"हाँ।"

"हाथ आगे करो।"

शीला ने अपना दायाँ हाथ आगे कर दिया।

"दायाँ नहीं, बायाँ हाथ आगे करो।"

शीला ने बायाँ हाथ आगे कर दिया।

रमेश पेशेवर कुशल ज्योतिषियों की तरह उसका हाथ उलट-पुलट करके देखने लगा। फिर गुरु गम्भीरता से सिर हिलाते हुए बोला—"विद्या का अच्छा योग है, मंगल में शुक्र जमकर बैठा है। वैसे तो जीवन में सुख-ही-सुख हैं, लेकिन पति की ओर से विशेष सुख की प्राप्ति होगी।"

शीला उसकी शरारत पर मुस्करा रही थी।

वह हाथ उलट-पलट कर बोला—"धन-धान्य से घर भरा रहेगा, हाँ, तीसवें वर्ष में स्वास्थ्य भयंकर रूप से बिगड़ेगा, लेकिन फिर सब ठीक हो जायेगा। सन्तान कुल मिलाकर........"

शीला ने हाथ खींचकर मीठे गुस्से से कहा—"बक-बक बन्द करो।"

"तो इतनी देर से मैं बकबक कर रहा हूँ।"

"तो फिर क्या।"

"अरे दूसरा ज्योतिषि होता तो सवा रुपया रखवा लेता। मुफ्त में हाथ दिखवा लिया।"

"अच्छा अब बहुत हुआ, मुझे कॉलेज जाना है, देर हो रही है। बताओ..........."

रमेश ने बीच में ही कहा—"हाँ, सुनो। तुम कॉलेज जा रही हो पढ़ने, मैं स्कूल जा रहा हूँ पढ़ाने। चलो आज घर से दोनों साथ-साथ चलें।"

"धत्! लोग देखेंगे तो क्या कहेंगे।"

यही कहेंगे कि आज मास्टर के साथ मास्टरनी भी है।"

"तुम अपनी बकवास बन्द नहीं करोगे!"

"कमाल है! आज तुम गालियाँ देने पर उतरी हो! कभी बकबक करना कहती हो, कभी बकवास कहती हो। तुम्हें कुछ सुध-बुध तो होनी ही चाहिये कि किससे बात कर रहो हो। तुम उसकी क्या हो, वह तुम्हारा क्या होने वाला है। एक समझदार लड़की को यह शोभा नहीं देता कि वह......"

उसकी बात पूरी होने से पहिले ही शीला हाथ में किताबें उठाकर चलते हुए बोली—"उफ! बाबा!! आज तो सचमुच तुम मेरा दिमाग ही चाट गये।"

"दिमाग में शहद लगाकर क्यों रखती हो! अरे सुन तो।"

"सुनते-सुनते मेरे कान पक गये हैं।" रुक कर शीला ने कहा।

"तुम्हारा दिमाग चाटा गया है, कान पक गये हैं, चलो तुम्हें डाक्टर के यहाँ ले चलूँ।"

"ताई घर में नहीं है, इसलिये आज तुम मूड में हो और कुछ ज्यादा ही चहक रहो हो।"

"तुम भी तो आज और दिनों से कुछ ज्यादा महक रहो ही। सेंट लगाना कब से शुरू किया तुमने ?"

"अच्छा तो अब मैं चलूँ ?"

"पर शीला, असल बात तो तुमने सुनी ही नहीं।"

"तुम बताना ही नहीं चाहते।"

"अच्छा बताता हूँ। यह सच है कि मैंने तुम्हें याद किया था और बहुत जोरों से याद किया था, मगर किसलिये याद किया था यह अब तक नहीं बता सका।"

"अरे बाबा ! जल्दी बताकर छुट्टी भी करो।"

"बता तो रहा हूँ, तनिक सब्र करो। हुआ यह कि आज स्कूल में लड़कों को परीक्षा की कॉपियाँ वापिस देनी हैं, उन्हें नम्बर भी बताने हैं। कॉपियाँ तो मैंने रात भर बैठ कर पूरी जाँच लीं। अब मुझे सूची बनानी थी। ऐसे में कोई कॉपियाँ देखकर नम्बर बोलता जाता और मैं सूची बनाता रहता तो काम अच्छी तरह और जल्दी हो जाता। मैं सोचता रहा कि काश ! तुम होतीं और मेरी मदद करतीं तो कितना अच्छा होता।"

"यानि कि नम्बरों की सूची बनाने के लिये मेरी मद्द के खातिर ही तुम मुझे याद कर रहे थे।"

"बिल्कुल।"

"ठीक है, मैं चलती हूँ।" और शीला सचमुच चली गई।

१५

सिद्धार्थ शंकर आस्थाना अनुशासन के विषय में बहुत ही सरल आदमी हैं, ऐसी लोगों की मान्यता है। अपने स्कूल में वे किसी भी किस्म का, किसी भी क्षेत्र में ऐसा काम या बात सामने नहीं आने देते, जिससे स्कूल के नाम को

धब्बा लगे। पिछले बारह वर्षों से वे इस स्कूल के प्रधानाध्यापक हैं और इस अवधि में विद्यार्थी के किसी भी अविभावक को उनसे कोई शिकायत नहीं हुई।

आज स्कूल वे समय से कुछ पहिले ही चले आये। शहर के जाने माने और जनकार्य विभाग के प्रमुख इन्जीनियर मि० मल्होत्रा अपने लड़के का अर्द्ध-वार्षिक परीक्षा-फल देखने आने वाले थे। मल्होत्रा साहब इनके पुराने परिचित व्यक्तियों में से थे, इसलिये इन्होंने अपने लड़के को आस्थाना साहब के संरक्षण में इन्हीं के स्कूल में भर्ती कर दिया था। आस्थाना साहब का बड़ा लड़का भी इसी साल इन्जीनियरिंग कॉलेज से इन्जीनियर बनकर निकला था, उसके विषय में भी मलहोत्रा साहब से कुछ सलाह मशविरा करना था, इसलिए उन्हें स्कूल में ही बुला लिया था। मगर मल्होत्रा साहब ज़ल्दी नहीं आये। वे आये तब जब स्कूल की छुट्टी होने वाली थी।

दफ्तर पहुँचते ही उन्होंने अफसोस जाहिर करते और क्षमा माँगते हुए कहा—"आस्थाना साहब, माफ करना मुझे देर हो गई। दिल्ली से उपमंत्री और कुछ ऑफिसर आ गये थे। उन्हें छोड़कर आना बड़ा मुश्किल हो गया था।"

"कोई बात नहीं मल्होत्रा साहब, हो जाता है कभी-कभी ऐसा भी। आप बैठिये तो।"

इन्जीनियर मल्होत्रा सामने की कुर्सी पर बैठ गये। बैठते हुए उन्होंने कहा—"कहिये क्या खबर है!"

"बस ठीक है, चल रहा है।"

"कल मैं साहबजादे का इन्तजार करता रहा, आये नहीं।"

"हाँ, मैंनें ही उसे कहा था कि मैं मल्होत्रा साहब से बात कर लूँ फिर जाना उनके पास।"

"बाई दी वे, क्या परसेन्टेज है?"

"फिफ्टी टू परसेन्टेज है।

"कम है।"

"हां, वहुत कम है।"

"खैर, कोई वात नहीं। आप उससे कहिये कि एप्लाई कर दे, आगे मैं सव ठीक कर लूंगा।"

"वह तो आपको करना ही पड़ेगा मल्होत्रा साहव, शेखर के पूरे कैरियर का सवाल है।"

"आप विल्कुल चिन्ता न करें।"

"आपके होते हुए मुझे चिन्ता करने की क्या जरूरत हैं। अव तो आपको ही चिन्ता करनी होगी :"

"आपकी सेवा में चौवीस घंटे हाजिर हैं। जरा शेखर को वुलाईये, देखूं क्या कर रहा है। पढ़ाई का क्या हाल है।"

"अभी वुलाता हूं।"

आस्थाना साहव ने घंटी वजाकर चपरासी को वुलाया। चपरासी आया, एक कागज पर कुछ लिखकर उन्होंने उसे दिया और निर्देश देकर भेज दिया। चपरासी चला गया।

"वैसे क्या रिपोर्ट है दिनेश की ?"

"अभी सभी विषयों की कॉपियां नहीं देखी गई हैं। दो-एक दिनों में प्रोग्रेस रिपोर्ट तैयारी होगी, तव पता चलेगा।"

"मेरा मतलव है कि टीचर क्या राय रखते हैं दिनेश के वारे में ?"

"आज तक की राय तो ठीक ही है। कभी किसी किस्म की शिकायत मेरे पास नहीं आई। वैसे उसका ध्यान पढ़ने से ज्यादा खेल कूद में है।"

"हां, घर पर भी वह खेल कूद में ही लगा रहता है। इस साल तो चल जायगा, मगर अगले साल मैट्रिक है, अगर प्रसन्टेज और डिवीजन अच्छा नहीं मिला तो आगे मामला गोलमाल है।"

"अजी कैसी वातें करते हैं मल्होत्रा साहव, मामला गोलमाल हो जायेगा तो हम किसलिये वैठे हैं, यहां।"

चपरासी के साथ दिनेश वहां आ पहुंचा। उसने अस्थाना साहव का अभिवादन किया और पिता की वगल में आकर खड़ा हो गया। पिता ने पूछा—"कहिये जनाव, गाड़ी कैसे चल रही है ?"

दिनेश लजाता हुआ मुस्कराने लगा।

आस्थाना साहब ने पूछा—"सभी कॉपियाँ और नम्बर मिल गये ?"

"जी नहीं, अब तक सिर्फ तीन कॉपियाँ मिली हैं।"

"कौन-कौन सी ?"

"साइन्स, हिन्दी और गणित की।"

"तीनों में पास हो ?"

"जी नहीं।"

बेटे के नकरात्मक उत्तर से पिता तनिक विचलित हुए। उन्होंने प्रश्न किया—"किस में रह गये हो ?"

"हिन्दी में।"

"कॉपियाँ कहाँ है ?"

दिनेश ने हाथों की किताब में से तीन उत्तर पुस्तिकाएँ निकाल कर पिता के सामने कर दीं। मल्होत्रा साहब कॉपियों को पलट कर देखने लगे। फिर आस्थाना साहब से बोले—"यह लीजिये साहब, साइन्स में हैं बावन, सौ में से। गणित में साठ हैं और हिन्दी में हैं सिर्फ बीस।"

"बड़ी अजीब सी बात है कि कठिन विषय में पास है और सबसे आसान विषय हिन्दी में फेल है।"

मल्होत्रा साहब ने पूछा—"बाकी विषय के नम्बर कब तक मिलेंगे ?"

"दो तीन दिन में सभी कॉपियां मिल जाएँगी।"

"बाकी के विषयों में क्या हाल है, मेरा मतलब, उनमें पास हो जाओगे ?"

"जी हाँ, सभी पर्चे अच्छे किये हैं।"

"तो हिन्दी का पर्चा अच्छा क्यों नहीं किया ?"

दिनेश ने पिता की कड़कदार आवाज सुनकर सिर नीचा कर लिया। मल्होत्रा साहब बोले—"लीजिये साहब, यह हाल है। और सब विषय में ठीक हैं, एक हिन्दी से रूठे बैठे हैं। बताईये क्या करना चाहिये ?"

"मैं देखता हूँ कि क्या मामला है।"

"देखना क्या है आस्थाना साहब, सालाना में कहीं लुढ़क न जाय, बेहतर है हिन्दी का ट्यूशन लगवा दीजिये।"

"आप बिल्कुल भी चिन्ता न करें, मैं सब ठीक कर लूंगा।" फिर उन्होंने दिनेश से पूछा—"कौन पढ़ाता है हिन्दी?"

"रमेश कुमार जी।"

"ठीक है, तुम जाओ क्लास में।"

दिनेश चला गया।

वे कहने लगे—"मैं अभी रमेश कुमार जी से बात करता हूँ, सब ठीक हो जाएगा।"

"देख लीजिये, आप जैसा मुनासिब समझें।" कहते हुए मल्होत्रा साहब उठ खड़े हुए।

आस्थाना साहब भी उनके साथ-साथ उठ गये।

"आप शेखर को कहें कि वह एप्लीकेशन लेकर मेरे पास आ जाय।"

"कब भेज दूं?"

"कल ही भेज दीजिये।"

"बहुत अच्छा!"

विदा लेकर मल्होत्रा साहब चले गये। आस्थाना साहब ने मेज पर बैठकर घंटी बजाकर चपरासी को बुलाया। वह आया तो उसे मास्टर रमेश कुमार जी को बुला लाने का आदेश दिया। चपरासी चला गया।

जल्दी ही रमेश ऑफिस में आ पहुँचा।

"बैठिये।"

मास्टर रमेश कुमार बैठ गये।

"कहिये, काम कैसा चल रहा है?"

"सब ठीक है जी।"

"स्कूल में आपका मन लग गया है न?"

"काम में मन लगाना ही पड़ता है।"

"मैंने आपको एक खास काम से बुलाया है। शाम के वक्त आप फ्री होते हैं क्या?"

"जी हाँ।"

"ट्यूशन कर सकेंगे ?"

"जी कर लूँगा।"

"आपके हिन्दी सेक्शन में दिनेश मल्होत्रा एक लड़का है। पहचानते हैं आप ?"

"ध्यान नहीं आ रहा है, पहचान लूँगा।"

"वह हिन्दी में काफी कमजोर है। उस क्लास को हिन्दी भी आप ही पढ़ाते हैं। और सभी सब्जेक्टस में वह पास है, मगर हिन्दी में रह गया है। आप रोज एक घंटा शाम को उसे हिन्दी पढ़ाईये।

"जी पढ़ा दूँगा।"

"कहिये, ट्यूशन का क्या कह दूँ मल्होत्रा साहब से।"

"वह आप देख लीजिये।"

"ऐसा है भई रमेशकुमार जी की मल्होत्रा साहब हमारे शहर के बहुत बड़े इन्जीनियरों में से हैं। वैसे भी आदमी बहुत नेक, मिलनसार और मदद के लिए दौड़कर काम आने वालों में से हैं। ऐसे अच्छे और जाने माने व्यक्ति से आपका परिचय हो, तो आगे चलकर बड़ा फायदा हो सकता है। वे अपने और दस दोस्तों से आपका जिक्र करेंगे। वे लोग भी अपने बच्चों की ट्यूशन के लिये आपको बुलायेंगे। इस तरह सिर्फ ट्यूशन ही ट्यूशन में आपको हज़ार पाँच सौ की आमदनी हो जाया करेगी। इन सब बातों से मेरा मतलब है कि आप मल्होत्रा साहब की इस ट्यूशन को किसी भी कीमत पर करें, भले ही शुरू-शुरू में आपको कुछ पैसे कम भी मिलें।"

"जी हाँ, मैं तो आपसे कह चुका हूँ कि जो कुछ आप मुनासिब समझें, मुझे मंजूर होगा।"

"बहुत खूब! जिन्दगी में ऊपर उठने के लिये समझौतावादी होना बहुत जरूरी है। हाँ, एक और छोटी-सी बात कहना चाहता था। हिन्दी में दिनेश के सौ में से सिर्फ बीस नम्बर ही आये हैं।

"जी मुझे मालूम नहीं।"

"लिस्ट आपके पास है ?"

"जी हाँ।"

"देखिये जरा।"

रमेश ने रजिस्ट्र में से लिस्ट निकालकर दिनेश मल्होत्रा का नाम ढूंडा। नाम मिला तो बोल पड़ा—"जी हाँ, बीस ही नम्बर हैं।"

"आप इसके पैंतीस कर दीजिये।"

रमेश को यह सुनकर झटका-सा लगा। अपने प्रधानाध्यापक श्री आस्थाना के प्रति उसके मन में असीम आस्था थी। कुछ दिनों में ही उसने उनके व्यवहार और सुनी-सुनाई बातों से यह धारणा बना ली थी कि वे बड़े ही सिद्धान्तप्रिय व्यक्ति हैं। मन में बसी उनकी भव्य मूर्ति पर जैसे किसी ने थूक दिया हो। उसे सिमेंट के व्यापारी गुप्ता और अस्पताल के सुपरिन्टेन्डेन्ट चौधरी, आस्थाना की आँखों में अट्टहास करते नज़र आने लगे। मानो वे कह रहे हों कि बच्चू हम से बचकर जाओगे कहाँ।

उसे विचारमग्न देखकर आस्थाना साहब ने पूछा—"क्या सोचने लगे ?"

"बात यह है सर, कि ऐसे भी बहुत से लड़के हैं जिनको बीस से ऊपर नम्बर मिले हैं और वे फ़ैल हैं। अगर बीस के पैंतीस किये गये तो करीब दस और लड़कों के नम्बर भी बढ़ाने पड़ेंगे।"

"उन सभी के नम्बर बढ़ाने की क्या जरूरत है ? मैं तो सिर्फ दिनेश के नम्बर बढ़ाने की बात कर रहा हूँ और ऐसा इसलिये कह रहा हूँ कि इसमें आपका फायदा-ही-फायदा है।"

रमेश फिर विचार मग्न हो गया। अजीब पशोपेश में फँसा हुआ था वह। परीक्षा के नम्बरों के मसले को लेकर उसकी खुद की चौथी या पाँचवीं नम्बर की परीक्षा आ पहुँची थी। आस्थाना साहब ने पूछा—"अब फिर क्या हुआ ?"

बड़ी मुश्किल से वह बोला—"सर, यह ट्यूशन आप किसी और को दिलवा दीजिये। फायदे के लिये बीस के पैंतीस करना मेरे लिए बहुत ही मुश्किल काम है।"

यह सुनकर आस्थाना साहब की मुद्रा कठोर हो गई। मेज़ पर हाथ मारते हुए उन्होंने कहा—"मास्टर होने पर भी आप निरे बच्चे हैं। व्यवहार की बात आपकी समझ में नहीं आई। दिनेश को पैंतीस नम्बर देना बहुत ही जरूरी है और यह आपको करना ही होगा।"

रमेश ने अपने हाथ की लिस्ट उनकी ओर बढ़ाकर कहा—"तो सर आप ही कर दीजिये।"

आस्थाना साहब तुनुक कर खड़े हो गये और झल्ला कर बोले—"व्हॉट डू यू मीन" आपका काम मैं करूँगा। हिम्मत कैसे हुई आपको इन्कार करने की।"

रमेश भी खड़ा होकर बोला—"बेईमानी न करने के लिए हिम्मत करने की जरूरत ही कहाँ पड़ती है सर!"

"ऐसा आदमी हमारे यहाँ नहीं चल सकता। आप इसी वक्त अपना इस्तीफा लिख दीजिये।" कहते हुए आस्थाना साहब ने मेज़ पर रक्खे हुए कागजों में से एक कोरा कागज़ उठाकर उसकी तरफ बढ़ा दिया। रमेश ने कागज़ थाम लिया और बैठकर इस्तीफा लिखने लगा। आस्थाना साहब कुछ हिचके, कारण कि इतना कुछ अभिप्राय मात्र धमकी देने के लिए किया गया था। इस्तीफा लिखकर रमेश उठ खड़ा हुआ और उनकी तरफ बढ़ाकर बोला—"लीजिये।"

"सुनो।" नम्र स्वर में वे बोले, मगर रमेश तेज़ी से बाहर निकल गया।

१६

"नहीं! नहीं!! नहीं!!! अब मैं तेरी एक नहीं सुनूँगा। जितना कर सकता था, किया। अब कुछ कर सकना मेरे वश की बात नहीं। आखिर मेरी कुछ सामाजिक जिम्मेदारी भी तो है।"

मास्टर जी स्कूल से लौट कर आये तो आग-आग हो रहे थे। उन्होंने निश्चय किया कि शीला की वात कहीं और पक्की कर देंगे। भाभी ने ईमानदारी का सवक सिखा कर रमेश का दिमाग खराव कर दिया है। रमेश इस ढंग और तौर तरीके से कहीं भी नौकरी कर नहीं सकेगा। वह कमायेगा नहीं तो कौन आदमी अपनी वेटी का हाथ उसे देने की मूर्खता करेगा। वे वड़वड़ाते हुए घर पहुँचे तो शीला उनका चेहरा और प्रवेश करने के ढंग से ताड़ गई कि कुछ गड़वड़ जरूर है। वह पूछ वैठी—"क्या हुआ पिताजी ?"

"हुआ नहीं अव होगा !" जलते-भुनते हुए वे वोले।

"क्या होगा ?"

"तेरा विवाह।"

दाल में कुछ काला है, यह तो वह समझ ही गई थी, मगर सारी-की-सारी दाल ही काली होगी, इस व्रात की उसने कल्पना नहीं की थी। इतने पर भी उसने सहज ढंग से कहा—"इतनी जल्दी क्या है !"

"जल्दी तुझे नहीं, मगर मुझे तो है। इन मूर्खों के भरोसे आज तक देर हो गई, वर्ना मैट्रिक करने के वाद ही तेरी शादी कर दी होती। मुझे क्या जरूरत थी कि तुझे पढ़ाता। खामखा चार साल निकाल दिये।"

पिता का वड़वड़ाना किस संदर्भ में हो रहा है, वह समझ गई। वहुवचन अपशव्द मूर्खों में, किन मूर्खों की ओर संकेत किया गया है, इतना भी वह जान गई। फिर भी पूछ वैठी—"कुछ कहिये तो हुआ क्या है ?"

"कोई नई वात नहीं हुई, वही पुरानी वात जो आज तक होती रही है आज भी हुई है। रमेश को जिन्दगी से प्यार नहीं है, उसे अपने आदर्श, अपने सिद्धान्त और ईमानदारी से ज्यादा प्यार है। तो फिर वैठे रहें लेकर अपने आदर्शों को, दूसरा क्यों भुगते इनकी मूर्खता को। हम क्यों और कव तक वैठे रहें इनके भरोसे।"

एक कुँवारी और जवान वेटी में लाज, मर्यादा और संकोच की जितनी मात्रा अपेक्षित होती है, उससे कहीं वढ़कर ही शीला में वह वात थी, लेकिन दूसरी ओर दुर्घटना यह भी घट चुकी थी कि शीला की शालीनता का छत्र

एक मात्र उसकी माँ संसार से जा चुकी थी। अतः उसे ही पिता से सभी प्रसंगों व विषय को लेकर बात करनी पड़ती थी। ऐसे में लाज और मर्यादा की सीमा रेखाओं के ठीक ऊपर आकर खड़े होने के लिये उसे, परिस्थिति-वश, बाध्य होना पड़ता था। पिता के लगातार बड़बड़ाते रहने से वह कुछ खीझ उठी। कुछ तीखे स्वर में उसने कहा—"कुछ कहिये भी तो, क्या हुई है पुरानी बात !"

मास्टरजी उस पर भी बिगड़ पड़े। वे बोले—"अब तू भी नादान बच्ची बनी जा रही है। सीधी सी बात नहीं समझ रही है। रमेश आज फिर से नौकरी छोड़ आया है। जरा सी बात थी, बस! जनाब इस्तीफा लिखकर चले आये। इन्सान को अपनी गलती भी माननी चाहिये ?"

"वह जरा सी बात क्या थी ?"

"एक बहुत बड़े इन्जीनियर के लड़के को गलती से कम नम्बर दे दिये। लड़का बहुत ही होशियार है, उसके हिन्दी में फेल होने का सवाल ही नहीं उठता। हैडमास्टर साहब ने बुलाकर समझाया कि इसकी कॉपी वापिस से देख डालो, तो बस; जनाब अकड़ पड़े। कहने लगे कि जो कुछ मैंने कर दिया है वह सही है, मैं दुबारा कॉपी नहीं देखूँगा। भला अफसर की बात कैसे टाली जा सकती है। इसमें उसका आदर्श, सिद्धान्त और ईमानदारी कहाँ अटकती थी। उससे बेईमानी करने के लिए किसने कहा था। सीधी सी बात थी। अफसर एक काम को दुबारा करने के लिये कहता है तो करना ही पड़ता है और करना चाहिये भी।"

मास्टरजी की बात शीला की समझ में भी आ गई। उसे सुनाई गई घटना में रमेश स्पष्ट ही दोषी नजर आया। गलती इन्सान से हो सकती है और जब हैडमास्टर दुबारा कॉपी जाँचने के लिये कह रहा है तो उनकी बात माननी ही चाहिये। पिता के ऊपर आई हुई खीझ मुड़कर रमेश की तरफ चली गई। पिता के मूर्ख शब्द में उसे सार्थकता नजर आने लगी। भविष्य की वह डोर जो रमेश के रोजगार से जुड़ी हुई थी, उसे टूटती दिखाई दी तो वह भीतर-ही-भीतर बलबला उठी। वह बोली—"तो आपने ये सब बातें उनसे क्यों नहीं कहीं।"

"कितनी वार कहूँ! कितना समझाया है मैंने उसे। अब उसे समझा सकना मेरे वश की वात नहीं रही।"

"तो ठीक है, मैं समझाती हूँ।"

कहकर शीला ने पाँव में चप्पल डालीं और चल पड़ी। मास्टर जी कहते ही रह गये—"अरी सुन शीलू।"

मगर वह सुनकर भी अनसुनी करके चलती चली गई।

रमेश के घर पहुँची तो वह चारपाई पर वैठी माँ के सामने चिन्ताग्रस्त हो, कुर्सी पर वैठा था। जाते ही वह बोली—"ताई, तुम अपने वेटे को कव समझाओगी। मैं लड़की की जात किधर की मार खाऊँ और किधर की मार से वचूं। पिताजी और इनके वीच में मेरी चटनी वनी जा रही है। नहीं सुनने और कहने वाली वातें मुझे कहनी सुननी पड़ती हैं। इन लोगों ने मिलकर मुझे वेशर्म वना दिया है। तुम आखिर किस दिन मेरे काम आओगी। अगर आज मेरी मां जिन्दा होती तो क्या मुझे वेशर्म वनना पड़ता।"

कहते-कहते शीला की हिचकियाँ वंध गईं। माँ ने वैठे-वैठे हाथ वढ़ाकर उसे अपने पास खींच लिया तो वह फूट-फूट कर रो पड़ी। माँ ने उसे छाती से लगाते हुए कहा—"मेरी वावली वेटी क्या हुआ है तुझे!"

रमेश भी फटी-फटी आँखों से देखता ही रह गया। शीला तो वस रोती ही जाती थी। माँ ने उसकी कमर थपथपाई। प्यार से उसके सिर पर हाथ फेरा। उसे चुप कराते हुए अपने आँचल से उसके आँसू पोंछते हुए कहा—"ऐसे एकदम वच्ची नहीं वना करते। पहिले वात वता, क्या हुआ है?"

शीला ने गर्दन उठाकर आँसू पोछे फिर रमेश की तरफ देखकर वोली—पूछना ताई, क्या हुआ है?"

"उससे क्या पूछूँ, उसने तो विना पूछे ही सव कुछ वता दिया है।"

"तो फिर क्या जरूरत थी इस्तिफा देने की?"

माँ ने एक नज़र रमेश को देखा फिर शीला से वोली—"तो क्या तू चाहती है कि रमेश वेईमानी और अनीति करता।"

क्रुद्ध सर्पिणी की तरह फुँकारते हुए शीला ने कहा—"अफसर की बात मानना क्या बेईमानी होती है, ताई !"

"हाँ, गलत बात मानना बेईमानी ही होती है।"

"कॉपी फिर से जाँचने में क्या बेईमानी है ?"

माँ ने फिर रमेश की तरफ देखा और बोली—"लगता है इसे पूरी बात मालूम ही नहीं !"

रमेश बोल पड़ा—"शीला, तुम्हें कितनी बात मालूम है जरा बताओ तो।"

"पिताजी कह रहे थे कि कोई इन्जीनियर आया था। वह चाहता था कि तुम उसके लड़के की कॉपी फिर से जाँचो और तुमने ऐसा करने से इन्कार कर दिया।"

माँ-बेटे की नजरें फिर से मिलीं, जिसका अभिप्राय असत्य पर आश्चर्य प्रकट करना ही था।

रमेश ने पूछा—"यह बात तुम्हें पिताजी ने बताई है ?"

"हाँ।"

"फिर तुम्हें गलत बात बताई गई है। तुम्हारे पिताजी झूठ बोलते हैं।"

शीला तड़फ उठी—"मेरे पिताजी कभी झूठ नहीं बोलते।"

"अगर यह सच है कि तुम्हारे पिताजी ने झूठ नहीं बोला है तो फिर यह पक्की सच्चाई है कि हैडमास्टर साहब ने झूठ बोला है।"

"तो आखिर सच क्या है ?" तमतमाये हुए मुँह से शीला ने पूछा।

"सच यह है कि हैडमास्टर साहब चाहते थे कि मैं इन्जीनियर के लड़के के नम्बर बीस से पैंतीस कर दूँ। मैंने उनसे कहा कि अगर ऐसा करना ही है तो पच्चीस और तीस नम्बर वाले लड़कों के भी पैंतीस किये जाने चाहियें। मगर वे नहीं माने। फिर मैंने उनके सामने लिस्ट बढ़ा दी और कहा कि वे खुद कर लें, मगर वे चाहते थे कि लिस्ट के नीचे जहाँ मेरे दस्तखत हैं, उसमें मैं ही बीस के पैंतीस करूँ। अपने दस्तखत के ऊपर मैं गैरकानूनी अनैतिक काम कैसे कर सकता था। मैंने इन्कार किया और उन्होंने इस्तीफा माँग

लिया। इतना ही नहीं उन्होंने तुम्हारे पिता जी को अपना दोष छिपाकर मुझे दोषी ठहराया है। क्लर्क से मुझे सब कुछ मालूम हो गया है। हेडमास्टर साहब का लड़का इन्जीनियर बनकर आया है और उस फेल होने वाले लड़के का बाप बहुत बड़ा इन्जीनियर है, जो हेडमास्टर साहब के लड़के को नौकरी दिलवायेगा। अपने लड़के की नौकरी के लिये उन्होंने मेरी नौकरी की बलि चढ़ाई है। अपने स्वार्थ के लिये मेरे पेट पर लात मारी है। जिस मुल्क में ऐसे हेडमास्टर हों, उस मुल्क के विद्यार्थियों का चरित्र कैसा होगा। अब अगर नई पीढ़ी बिगड़ गई है तो दोष नई पीढ़ी का क्या है, इस पुरानी पीढ़ी का पाप ही तो सिर पर चढ़कर बोल रहा है।"

रमेश उत्तेजना में कहता चला गया। ज्यों-ज्यों उसकी उत्तेजना चढ़ाव लेती गई, त्यों-त्यों उस उत्तेजना से निकलने वाला सत्य शीला की तमतमाहट को नीचे उतारता चला गया। रमेश जब चरम सीमा पर पहुँचा तो शीला धरातल पर आ चुकी थी, कारण कि सत्य ने पर्दा उठा दिया था। अब वह खुद लज्जित-सी होकर बगलें झाँक रही थी। उसके लिये कुछ भी बोल सकना मुश्किल हो गया। माँ ने उसकी स्थिति को समझकर उसे उभारा और बोली—"शीलू, बेटा हमेशा ऐसा नहीं होता कि जो कुछ सुना जाये वह सच हो। सच्चाई तक पहुँचने के लिये खुद कदम उठाकर आगे बढ़ना पड़ता है। दूसरे कदम उठाकर जब हम तक आकर कुछ कहते हैं तो सत्य ठसके खा-खाकर टूट चुका होता है, इसलिये उसका भरोसा करना समझदारी नहीं।"

भन्नाया हुआ रमेश बीच में बोल पड़ा—"इसे समझ से क्या लेना देना है माँ। अपनों की गलत बात मान ली और पराये की सही बात भी समझने की जरूरत नहीं समझी।"

पूरी बात ही तेज छुरी की तेज धार थी, मगर जिसने गहरा कटाव करके घाव किया वह पराया शब्द का तीखापन था। रमेश अपने को शीला के लिए पराया समझता है, यह शीला के लिए असहनीय था। अपनी मन की बात आँखों से व्यक्त करते हुए जब वह रमेश की तरफ देख रही थी तो ऐसा

लग रहा था कि उसकी आँखों में पीड़ा का सागर उमड़ पड़ा है। इतने पर भी अपनी वाणी को संयत करते हुए उसने कहा—"मेरा तो दोनों ही तरफ मरण है। इधर कुआँ है उधर खाई है। किसकी सुनूँ क्या करूँ।"

पीड़ा की अग्नि इतनी तेज़ थी कि अश्रु भी सूख गये। माँ ने देखा कि अश्रुपूर्ण आँखों से अश्रुविहीन आँखों में अधिक पीड़ा है। उसने शीला का हाथ पकड़ कर कहा—"बावली बातें मत किया कर। कुआँ और खाई देखें तेरे दुश्मन! चल, चाय बना अपने और रमेश के लिये, थोड़ी-सी मैं भी पीऊँगी।"

"मैं इसके हाथ की चाय नहीं पिऊँगा, माँ।"

"क्यों रे?"

"जो अपने आपको समझदार समझे और मुझे मूर्ख समझे उसके हाथ की चाय मैं नहीं पिऊँगा।"

"तू भी अड़ियल टट्टू है, बात खत्म हो गई तो फिर हवा देने लगा।

शीला बोल पड़ी—"नहीं ताई, मैं ही कहाँ निकम्मी बैठी हूँ कि दुनिया भर के लोगों के लिये चाय बनाऊँ। आदमी अपनों के लिये करता है, परायों के लिये कौन कुछ करता है। मैं सिर्फ तुम्हारे लिये चाय बना लेती हूँ।"

"शुरू हो गया तुम दोनों का जंग। मैं अभी समझाऊँगी तो तुम समझोगे नहीं। बाद में अपने आप हँसना बोलना शुरू कर दोगे।"

"नहीं माँ, हँसना बोलना समझदार लोगों के साथ अच्छा लगता है।"

शीला तुनुक कर उठ खड़ी हुई और बोली—"अच्छा! अच्छा!! तुम अपनी समझदारी अपने पास रक्खो, मैं मूर्ख ही सही!"

फिर वह माँ से कहने लगी—"ताई, मैं चाय घर से बनाकर ले आती हूँ। यहाँ इतनी तेज़ गर्मी में बैठकर मुझ से चाय नहीं बनाई जायेगी।" इतना कहकर वह चल दी। माँ और रमेश उसका जाना देखते रहे। किसी ने उसे रोका नहीं।

शीला घर पहुँची तो मास्टर जी अपने लिये चाय बना रहे थे। उन्हें रसोई से हटाकर वह खुद चाय बनाने लगी। मास्टर जी ने उसके उतार-चढ़ाव से भरे उबड़-खाबड़ चेहरे को देखकर पूछा—"क्या हुआ ?"

"होना क्या है! दुनिया के सभी नेक और ईमानदार लोगों को कुएँ तालाबों में डूबकर मर जाना चाहिये या फिर गले में रस्सी बाँधकर लटक जाना चाहिये। बेईमान लोग वैसे भी इन्हें जीने तो देंगे नहीं। बेईमानों की मार खाकर रिसते-रिसते मरने से तो एक बार ही छुट्टी कर लेना ठीक है।"

उसकी बात से मास्टर जी बिगड़ उठे और बोले—"बकबक किए जायेगी या कुछ बोलेगी भी। यहाँ से तो बड़े जोश में गई थी और आई है तो होश खोकर आई है।"

"होश मैंने नहीं खोये होश उन लोगों ने खोये हैं जो कुर्सियों पर बैठे हैं, जिनके सिर पर देश और समाज को ऊपर उठाने की जिम्मेदारियाँ हैं। आपके हैडमास्टर साहब ने सरासर झूठ बोला है आपसे। उन्होंने आपको सब कुछ गलत बताया है, पिताजी।"

मास्टर जी आँखें तरेर कर व्यंगपूर्ण स्वर में बोले—"तो रमेश ने जो कुछ तुझे बताया है, वह सही है।"

"बिल्कुल सही है।"

"सुनूँ तो क्या सही है।"

जवाब में शीला ने रमेश की बताई हुई बात दोहरा दी। सुनकर मास्टर जी भी तनिक लज्जित से हुए। उन्हें लगा कि रमेश के प्रति अन्याय हुआ है। कुछ सोचकर उन्होंने कहा—"बेटी शीलू, अगर यह बात सच भी है, तो भी मैं कहूँगा कि रमेश को समझदारी से काम लेना चाहिये था।"

"आपका मतलब है बेईमानी से काम लेना चाहिये था।"

मास्टर जी अब तक शान्त हो चुके थे। रमेश के प्रति हुए अन्याय तथा हेडमास्टर के झूठ पर उन्हें दुःख हुआ था। नम्र स्वर में समझाते हुए उन्होंने

कहा—"नहीं, इसे बेईमानी नहीं कहते, व्यावहारिकता कहते हैं। आदमी को मौका देखकर नीति से काम लेना चाहिये।"

"आज आप मुझे यह कैसी उल्टी शिक्षा दे रहे हैं, पिताजी। बेईमानी को व्यावहारिकता और अनीति को नीति का नाम दे रहे हैं।"

एकबारगी मास्टर जी का मानस हिल उठा। अध्यापक के नाते विद्यार्थियों को चरित्र-निर्माण और नीति-ज्ञान देने वाले व्यक्ति को जैसे चोरी, चरित्रहीनता या अनीति करते हुए उनकी बेटी ने पकड़ लिया हो। तुरन्त ही वे संभले और कहने लगे—"शीलू, मैं एक जवान बेटी का बाप हूँ। तेरा पिता होना मेरे लिये सौभाग्य की बात हो या न हो, मगर मेरी कमज़ोरी ज़रूर है। तेरे लिये मेरी जो ज़िम्मेदारी है, उसने मुझे कमज़ोर बनाया है। आदर्श और सिद्धान्तों में मेरा विश्वास नहीं है, ऐसी बात तो नहीं, मगर मैं बँधा हुआ हूँ। रमेश अगर बूढ़ी माँ का बेटा न होकर किसी जवान बेटी का बाप होता तो उसके पास आदर्श, सिद्धान्त, नेकी, ईमानदारी जैसी कोई बात या चीज़ न होती और मैं अगर तेरा पिता न होकर रमेश की तरह किसी वृद्धा का पुत्र होता तो मेरे आदर्श रमेश की अपेक्षा कहीं ज़्यादा वज़नदार होते। आदमी का चरित्र व्यक्तित्व और उसके उसूलों को बनाने में उसकी परिस्थितियाँ बहुत बड़ा पार्ट अदा करती हैं, बेटी। तेरे और रमेश के पास सिर्फ जोश है, होश बिल्कुल नहीं, जबकि मेरे लिए होश की अहमियत ज्यादा है। उसूल मेरे लिये बाद में हैं, पहिले मैं अपने पिता होने की ज़िम्मेदारी को सामने रखता हूँ।"

पिता जी की बात में शीला को सच्चाई नजर आई, लेकिन वह ग़लती पर है, ऐसा मानने के लिये भी तैयार नहीं थी। उसने कहा—"पर पिता जी रमेश आपकी जिम्मेदारी में कहीं भी बाधक नहीं है।"

"है।"

"कैसे ?"

"नादान क्यों बनती है, देख नहीं रही कि मैं तेरी शादी नहीं कर सकता। जब तक रमेश का काम पक्का नहीं होता, कोई माकूल नौकरी नहीं मिलती, तब तक मैं तेरी शादी उससे कैसे कर सकता हूँ।"

शीला बहस के लिये तैयार होकर बोली—"मतलब यह कि अगर कोई इंसान अपनी नेकी, शराफ़त और ईमानदारी के कारण गरीब है तो उसकी शादी नहीं हो सकती। उसका अच्छा और सद्‌गुणी होना ही काफी नहीं, पैसेवाला होना भी लाज़मी है ?"

"दुनियादारी के हिसाब से ऐसा ही है ।"

"इसका तो यह भी मतलब हुआ कि बदचलन आदमी, जिसमें इन्सानियत और शराफ़त की बू न हो और बेईमानी से जिसने पैसा कमाया हो, उसकी शादी आसानी और आराम से हो सकती है !"

चाय तैयार हो चुकी थी। शीला ने प्याला पिताजी के सामने मेज़ पर रख दिया। चाय का प्याला संभालते हुए वे बोले—"ऐसा ही होता है और न जाने कब से ऐसा होता आ रहा है। यह बुराई समाज का अंग और आवश्यकता बनकर अब बुरी नहीं रही। तू या रमेश अपना सारा जोश और जोर लगाकर भी इस बुराई को मिटा नहीं सकोगे।"

शीला एक गिलास में चाय लेकर उसे कटोरी से ढकते हुए कहने लगी—"आप यह कहना चाहते हैं कि बुराई के आगे इंसान को झुक जाना चाहिये !"

"झुकना ही पड़ता है, दूसरा रास्ता ही नहीं है।"

"मतलब यह कि सीता को छुड़ाने के लिये राम को रावण से युद्ध नहीं करना चाहिये था। क्योंकि रावण बहुत ताकतवर था, शक्तिशाली था, इसी-लिये राम को चाहिये था कि सीता को भूल-भालकर चुपचाप अयोध्या लौट आते ?"

और दिनों की अपेक्षा शीला अपने पिता के सामने कुछ अधिक ही तार्किक हो गई थी। वास्तव में उसके भीतर की आवश्यकता और सत्य ने उसे निर्भीक बनाकर तार्किक भी बना दिया था। मास्टर जी भी हैरानी से उसे देखने लगे। चाय का प्याला मेज पर रखते हुए उन्होंने कहा—"तू तो बात को कहाँ से कहाँ ले गई। मैं कुल मिलाकर यह कहना चाहता हूँ कि ज़माना बदल रहा है, उसके साथ-साथ आदमी को भी बदलना चाहिये।

ज़माना आगे बढ़ता जाये और हम पीछे रह जायें तो फिर हमारे लिये कोई ठहरेगा ही क्यों ?"

शीला भी जैसे पिता से अन्तिम निर्णय कर लेने के लिये तैयार हो गई थी। उसकी समझ में यह बात बैठ गई थी कि बिना तर्क किये पिताजी को वह अपनी बात समझा नहीं सकेगी। वह बोली—"भीड़ में सड़क पर चलते हुए नादान बच्चे बड़ों से उंगली छुड़ाकर आगे निकल जाते हैं तो क्या बड़ों को भी उनके साथ-साथ आगे-आगे भागना चाहिये। समझदार लोग तो दौड़कर बच्चों को पकड़ते हैं और अपने साथ चलाते हैं। कुछ नादान लोग बच्चों की गलत खुशी में शामिल होकर साथ-साथ भागने लगते हैं और इस तरह चलन बिगाड़ कर कहते हैं कि ज़माने के साथ आगे बढ़ना चाहिये। ज़माने के साथ कितना, कहाँ और कैसे बदलना और बढ़ना है, यह अब तक किसी की समझ में नहीं आया है। मुझे तो यह भी समझ में नहीं आया कि ज़माना कैसे बदल गया। कुछ तौर तरीके, कुछ खान-पान या कुछ रहन-सहन के बदलने को ज़माना बदलना कहते हैं क्या ? पत्थर, पानी, आग, धरती, आसमान, नदी, नाले, पहाड़, झरने, शेर, पक्षी, सब कुछ अपने धर्म और गुण को युगों से लिये चले आ रहे हैं। इनमें कहीं भी कुछ बदल नहीं हुआ, न होगा और इंसान इन चीज़ों से इस तरह बँधा हुआ है कि इनके बिना कदम भी नही उठा सकता। फिर कैसे बदल गया है ज़माना !"

मास्टरजी को पहली बार यह सोचने के लिए मजबूर होना पड़ा कि वे अब एक लड़की के ही पिता नहीं, बल्कि एक पढ़ी-लिखी लड़की, जो ग्रेजुएट होने वाली है, उसके पिता हैं। वैसे तो बेटी की समझ-बूझ, उसकी सजगता और तर्क-बुद्धि पर उन्हें भीतर ही भीतर खुशी हुई, मगर वह ऐसी समझ से जा जुड़ी थी, जिसे दुनियादारी की भाषा में नासमझी ही कहा जा सकता था। बेटी की लम्बी चौड़ी बात सुनकर वे बोले—"शीलू, तू खुद सयानी और समझदार हो गई है, अब मै तुझे कैसे समझाऊँ। पर तेरे मेरे बीच एक बात बहुत ही साफ़ है कि तेरी शादी रमेश से तभी हो सकेगी, जब वह ढंग से खाने कमाने लायक हो जायेगा।"

शीला भी गम्भीर होकर कहने लगी—"पिताजी, मेरी लाज क्यों तुड़वाते हो। शादी की बात मैंने कब की थी। आपने और ताई ने मिलकर ही तय किया था और मेरे सामने ही तय किया था। मन कोई जंगल की जमीन तो नहीं, जहाँ कोई भी आकर तम्बू लगा ले, यह तो एक मन्दिर है, जहाँ एक बार किसी मूर्ति की स्थापना होने के बाद दूसरी मूर्ति का प्रवेश नहीं होता। जिस मूर्ति की स्थापना आपने की है, उसे आप तोड़ना या हटाना चाहेंगे भी तो मैं यह कैसे करने दूंगी। मन के मन्दिर की अधिकारिणी तो मैं हूँ और अब वहाँ से मूर्ति को हटा सकना मेरे वश की भी बात नहीं रही। रमेश चाहे काम धन्धा करे या न करे; कमाये चाहे न कमाये, मेरे लिये अब दूसरी बात सोच सकना, एकदम असम्भव है।"

शीला अपनी बात खत्म करके चाय का गिलास रुमाल से पकड़कर ताई की तरफ चल दी।

मास्टर जी से कुछ भी कहते नहीं बना। वे चुपचाप खड़े कुछ सोचते रहे। अपने आपको अत्यन्त ही द्विविधापूर्ण स्थिति में पड़ा देखकर वे हल की खोज में कुर्सी पर बैठकर विचार करने लगे। वे पछताने लगे कि क्यों उन्होंने शीला की बात रमेश की माँ से पक्की की थी। उन्हें शीला की माँ याद आ गई। बुरे वक्त या द्विविधापूर्ण स्थिति में इंसान को या तो अपनी माँ याद आती है या अपने बच्चों की माँ याद आती है। वे सोचने लगे कि अगर शीला की माँ जिन्दा होती तो मुझे रमेश की मां से शीला की बात चलाने की जरूरत ही क्यों पड़ती। वह खुद ही लड़का ढूँढती और चिन्ता करती। उसके न होने से और शीला की शादी की चिन्ता से दबकर ही मैंने जल्दबाजी में वहाँ बात कर डाली और अब फँस गया हूँ। इधर कुआँ उधर खाई! किधर से बचूँ और किधर गिरूँ!! अगर रमेश का यही हाल रहा तो उसे काम कैसे मिलेगा, उसे नौकरी नहीं मिली तो शीला की शादी कैसे करूँगा। वैसे रमेश के सिद्धान्तों में तो उलट फेर होने वाला नहीं, अगर शीला के विचारों में ही उलटफेर हो सके तो बात बने।

सोचते-सोचते वे उठे और किताबें खोलकर अपने स्कूल के काम में डूब गये।

उस रात रमेश को चैन नहीं पड़ा। वह कमरे में इधर से उधर चहल टहल करता रहा। माँ ने समझाया—"क्यों परेशान हो रहा है, सो क्यों नहीं जाता ?"

"रोज़ ही सोता हूँ माँ, आज कुछ सोचने दो।"

बिस्तर पर करवट लेकर माँ ने कहा—"क्या सोच रहा है तू ?"

"सोच रहा हूँ कि ऐसे कब तक चलेगा। इधर-उधर से कर्ज लेकर अब तक घर का काम चलता रहा है। कर्जदारों के तकाजे भी शुरू हो गये हैं। खाना पीना तो जैसे-तैसे चलता है, मगर तुम्हारा इलाज भी ढंग से नहीं हो रहा। नेकी और ईमानदारी की धार से सब कुछ कटता छँटता जा रहा है।"

माँ ने खाँसते-खाँसते संयत स्वर में कहा—"तो अब किया क्या जाये।"

"कुछ तो करना ही पड़ेगा।"

माँ सजग होकर बिस्तर पर उठ बैठी और बोली—"क्या करने का इरादा है।"

रमेश ने एक अर्थपूर्ण दृष्टि से माँ की ओर देखा, फिर दूसरी ओर मुंह करके बोला—"माँ, दुनिया में और भी बहुत से आदमी नौकरी करके अपना पेट भरते हैं, वे सभी बेईमान तो नहीं हैं।"

"तो ?"

"दुनिया में इतने बड़े-बड़े लोग हैं, जिसके पास हज़ारों-लाखों रुपया है, कार है, बंगला है, वे लोग भी दिन रात काम और मेहनत करके ही पैसा पैदा करते हैं।"

"तो तुझे इनसे क्या मतलब है ?"

"मेरा मतलब है, कि जिन्दा रहने के लिये सिर्फ सिद्धान्तों से कैसे काम चलेगा, कुछ समझौता तो करना ही पड़ेगा।"

"कैसा समझौता करेगा, कुछ बोल तो !"

रमेश चहलकदमी करते-करते रुका और एक पुरानी शैली की आराम कुर्सी पर बैठते हुए बोले—"मां, जैसा दूसरे करते हैं, उतना नहीं तो थोड़ा कुछ तो करना ही पड़ेगा। यह सच है मां, कि बेईमानी की बुराई आम लोगों की जिन्दगी में इतनी भीतर घुस चुकी है कि अब बेईमानी उनके लिये बुराई नहीं रही, बल्कि ईमानदारी बुराई हो गई है। हमें ऐसे लोगों के बीच में रहना है, ऐसे लोगों के साथ में रहना है, तो ऐसा ही कुछ करना पड़ेगा, जैसा वे लोग करते हैं।"

डरते-डरते रमेश ने इतना कुछ कह तो दिया, मगर मां का चेहरा देखकर वह भीतर ही भीतर आतंकित हो उठा। उसने देखा कि मां के चेहरे पर असन्तोष और विषाद की रेखाएँ गहरी हो उठी हैं। कंठ के अवरोध को ठीक करते हुए मां ने अत्यन्त संयत, सधे हुए और विनम्र स्वर में कहा—"पता नहीं इतना सब कुछ तू कैसे सोच सका और कह सका। खैर! तू मेरी एक-दो बात सुन और बड़े ध्यान से सुन! यह सत्य तो तूने खुद समझा जाना और देखा है कि माता-पिता का कलुष, उनके कुकर्म और गलतियां सन्तान को ले डूबती हैं। हमारा समाज चाहे कितनी लम्बी-चौड़ी बातें करे, भाषण दे, नाटक खेले मगर इतना सब करके भी क्षमा-भाव उसमें नहीं है। पिता के कुकर्मों को, पिता की मृत्यु के बाद भी उसकी सन्तान में जीवित करके देखने की भारतीय समाज की पुरानी कुटैव और कुरीति है। पिता के कुकर्मों और यश का भागीदार पुत्र भले ही हो अथवा न हो, किन्तु उसके कलुष का बोझ तो अपने सिर पर लादना ही पड़ता है। बाहर तूने कई घरों में ऐसा देखा है, आज मैं तुझे अपने घर की बात बताती हूं जिससे तू आज तक बेखबर है।"

मां कथा सुनाने के अन्दाज में तैयार होकर बैठी तो रमेश भी उत्सुकता-वश सीधा होकर बैठ गया।

मां कहने लगी—"नेकी औ ईमानदारी को अपना कर्म-धर्म बनाकर मैं क्यों अड़ी बैठी हूं, इसका रहस्य भी आज तुझे मालूम हो जायेगा।"

रमेश कुर्सी से उठकर मां के पास आकर बैठ गया। मां कहती रही—

"तुझे पता है तेरे दादा कौन थे ?"

"हाँ, रामपुर रियासत में बड़े ऑफिसर थे।"

"ऑफ़िसर नहीं, रामपुर महाराजा के दीवान थे।"

खुशी और आश्चर्य से रमेश की आँखें फैल गई। हैरान होकर उसने पूछा—"तो फिर माँ, हम लोगों का ऐसा हाल क्यों हुआ। इस हालत तक कैसे आ पहुँचे ?"

"वही तो बता रही हूँ। तेरे दादा लाला शिव प्रसाद महाराजा रामपुर के दीवान थे और सारा कारोबार उन्ही के हाथ में था। महाराजा उन पर पूरा-पूरा भरोसा करते थे। तेरे दादाजी ने उनके भरोसे का गलत फायदा उठाना शुरू कर दिया। महाराजा साहब के खाते का अन्न, कपड़ा, गहना, फर्नीचर, फल-फूल और दूसरी चीजें हमारे घर में आने लगी। इतना ही नहीं तेरे दादाजी ने धीरे-धीरे नगदी पर भी हाथ साफ करना शुरू किया। बाजार से जो चीज़ दस हज़ार में खरीदी जाती, उसका बीस हज़ार का बिल बनता। पन्द्रह हज़ार दुकानदार को मिलते और पाँच हजार दादाजी की जेब में आते। इस तरह उन्होंने लाखों रुपया बनाया और खूब घर भरा। उस समय तेरे पिता निरे बालक थे। इन बातों का बिल्कुल भी ज्ञान नहीं था। मगर बेईमानी की कमाई तो पेट में आने लगी थी। दरबार से चुराये गये फल मेवे, दूध, घी और अन्न तो उनके पेट में उतरा ही था। पिता के कुकर्म नें सन्तान को भी भागीदार बना लिया था, चुराई हुई चीज़ें खिला-खिला कर, जिसका नतीजा तेरे पिता को आगे चलकर भुगतना पड़ा। वक्त गुज़रता गया, मगर पाप कितने दिन फल सकता है, आखिर एक दिन चोरी पकड़ी गई और तेरे दादाजी पर मुकदमा चला। घर में जैसे झाड़ू सी लग गई और सभी कुछ साफ हो गया। मेरी शादी हो चुकी थी, और मुझ पर जो गहने चढ़ाये गये थे वे भी चोरी के ही थे। बहुत ही किरकिरी हुई, सिर नीचे हो गये। सारा शहर और समाज थू थू करने लगा। तेरे दादाजी को बहुत धक्का लगा। उन्होंने चारपाई पकड़ ली। मुकदमे का फैसला होता और वे जेल जाते उससे पहिले ही वे भगवान के घर चले गये। मैं और तेरे पिताजी

अपने दो-दो कपड़ों में रातोंरात रामपुर छोड़कर चल दिये। लाज के मारे हमें ऐसा करना ही पड़ा। तब तक तेरे पिता ने मैट्रिक भी पास नहीं किया था। नये शहर में कोई जान-पहिचान नहीं, नौकरी या काम धन्धा मिले तो कैसे। बहुत कोशिश करने पर पोस्टमैन की जगह मिली और उन्होंने वही नौकरी पकड़ ली। बेईमानी से हासिल की हुई दौलत घर में आई तो बड़ी शान-शौकत से आई थी मगर जब गई तो तोड़-फोड़ और पूरी विनाश-लीला करके गई। घर के इस तरह टूटने का गम तेरे पिता को भी था। अक्सर वे दुःखी और परेशान रहते। चिन्ता करते-करते वे भी बीमार रहने लगे थे। तेरे होने के दूसरे साल बाद ही उन्हें दमे की बीमारी ने आ दबोचा। तू जवान हुआ उससे पहिले वे भी भगवान को प्यारे हो गये।"

कहते-कहते माँ का स्वर भीगने लगा। अतीत साकार होकर कचोटने लगा। अपने को संभाल कर वह फिर कहने लगी—"तूने समझा बेटे, कि बेईमानी देती तो है, मगर लेती उससे कई गुना है। बेईमानी का धर्म, देने का है ही नहीं, सिर्फ लेने का है।"

नानी के पास बैठकर मजेदार कहानी सुनने का मजा लेते हुए अबोध बालक की तरह रमेश चुपचाप टुकर-टुकर अपनी माँ की तरफ देखे जा रहा था। माँ की बात खत्म हुई तो वह जैसे चौंका। चौंककर उसने कहा—"पर माँ, ये बड़े-बड़े लोग बेईमानियाँ करते हैं, इनका तो कुछ भी नहीं बिगड़ता।"

"ऐसा नहीं है बेटे, किसी को पूर्व-जन्म के पुण्य काम आ जाते हैं, वर्ना भुगतान तो करना ही पड़ता है। कुदरत किसी को छोड़ती नहीं। इन बड़े लोगों को भी नहीं। रात दिन देखते और सुनते हैं कि फलाँ की लड़की ड्राइवर के साथ भाग गई, फलों की बीबी को लकवा मार गया और फलाँ का बेटा सट्टे में घर फूंक बैठा। ये सब कुकर्मों का ही फल है। बेटा रमेश, बेईमानी करने का हक सिर्फ उस इंसान को हासिल है, जिसके औलाद न हो या औलद होने की उम्मीद भी न हो। ऐसे आदमी को बेईमानी का सारा

भुगतान खुद ही करना पड़ता है, रमेश स्वीकृति में माँ की बातों का उत्तर गर्दन हिलाकर देता रहा।

माँ कहती गई—'यही कारण है रमेश, कि मैंने ईमानदारी की कठोर और कड़वी घूंट तेरे गले में उतारने की कोशिश की ताकि आज का कड़वा स्वाद कल तेरे जीवन की मुस्कान बन सके। नेकी का बीज देर से फलता है, मगर फलता है और आखिर तक हरा रहता है। सोने के प्याले में भरकर अमृत के उस घूंट को पीने का कोई फ़ायदा नहीं मेरे बच्चे, जिसके बदले में जीवन भर सिर पर विष का घडा उठाये फिरने का कष्ट भोगना पड़े।"

माँ बोलते-बोलते हाँफने लगी। उसकी खाँसी भी उभर आई। खाँसते-खाँसते उसका दम भरने लगा तो रमेश ने उठकर उसे लिटाते हुए कहा—"लेट जा माँ, बहुत बोलना पड़ा आज।"

"तूने बोलने पर मजबूर कर दिया। जब तक जिन्दा हूँ, तब तक बोलती ही रहूँगी।"

रमेश माँ के सिरहाने बैठकर उसे सहलाने लगा। खाँसना कम हुआ तो हाथ दबाते-दबाते पाँव दबाने लगा।

माँ ने विरोध करते हुए कहा—"रहने दे रे!"

"दबाने दे माँ, क्या सुख दे सका हूँ तुझे! दादाजी से, पिताजी से, मुझ से किसी से भी कुछ सुख नहीं मिला। सारी जिन्दगी दुःख झेलते ही बीत गई।"

"नहीं रे नहीं, ऐसा नहीं है। तू गलती पर है। मैं बिल्कुल भी दुःखी नहीं। क्या दुःख है मुझे। कितनी माँएँ हैं दुनिया में, जिन्हें मेरे जैसा सुख हासिल होगा। मोटर, बंगले और लाखों रुपयों के मालिकों की माँओं को भी वह सुख हासिल नहीं होगा जो सुख मेरे पास है। एक ईमानदार और नेक बेटे की माँ होना तो बहुत बड़ा सुख है। किसी-किसी को ही नसीब होता है, यह सुख! मुझे फख्र है कि मेरा लड़का लाखों और करोड़ों में एक है।" माँ को फिर खाँसी उभर आई।

रमेश बोला—"अब बस कर माँ, चुप रह, बोल मत।"

"मुझे बोलने दे। मैं कहूँगी और डंके की चोट पर कहूँगी कि मैं आराम से मर सकती हूँ। जब मैं मरूँगी तो मौत आकर मेरे पायताने की तरफ खड़ी होगी। मैं मौत की आँख से आँख मिला सकूँगी। मुझे ले चलने के लिए मौत मेरी इजाज़त लेगी। मैं कहूँगी तब ही वह मुझे ले जायेगी। मौत मुझे बाइज्ज़त अपने साथ ले जायेगी। क्योंकि उसे पता रहेगा कि जिसे मैं ले जा रही हूँ, इसने भगवान की दुनिया को बुरा बनने से रोकने का काम किया है। बुराई को रोकना, भलाई को बढ़ावा देने की पहली शर्त है।"

रमेश ने माँ के मुँह पर हाथ रखकर कहा—"अब बस माँ कर, क्या मौत की बात ले बैठी!"

"मौत के नाम से तू डरता है, पागल कहीं का! इस नाम से लोग शुरू से डरते ही आ रहे हैं, इसलिये तू भी डरता है।"

रमेश ने तनिक ऊँची आवाज़ में कहा—"भगवान के लिये अब चुप कर, तेरी तबियत ठीक नहीं है। बाकी की बातें कल कर लेना।"

बेटे की बात मानकर वह करवट लेकर सोने की तैयारी करने लगी। सोते-सोते वह बोली—"मैंने डबल रोटी और दूध तेरे लिये रखा है, जाकर खा ले।"

माँ को कम्बल ओढ़ाकर रमेश रसोई की तरफ चला गया।

१९

नौकरी के लिये रमेश ने कई जगह प्रार्थना-पत्र दे रखे थे। आर्यन मसाला फैक्टरी से उसे इन्टरव्यू लेटर मिला। वह वहाँ गया और बतौर सुपरवाइज़र नियुक्त कर लिया गया।

उस दिन माँ की तबियत कुछ ज्यादा ही खराब थी। उसने सोचा भी कि उस दिन न जाये, मगर माँ ने समझा-बुझाकर उसे भेज ही दिया।

रमेश जब फैक्टरी में पहुँचा तो वहाँ के जनरल मैनेजर ने उसका स्वागत किया और घूम-फिरकर उसे सारी फैक्टरी दिखाई। जनरल मैनेजर श्री शर्मा उसे बहुत ही भले आदमी लगे। शर्मा जी ने उसे उसका सारा काम भी समझा दिया। सब कुछ समझा कर तथा अन्य कुछ विशेष व्यक्तियों से परिचय कराने के बाद अपने ऑफिस में जाते-जाते रमेश का हाथ धीरे से दबाकर उन्होंने कहा—"मिस्टर रमेश कुमार, इसे आप अपनी ही फैक्टरी समझें, आप यहाँ नौकर नहीं, हिस्सेदार हैं। आगे चलकर आपको वे सभी सहुलियतें मुहैया की जायेंगी जो किसी भागीदार को हासिल होती हैं, बस शर्त सिर्फ यही है कि ट्रेड सिकरेट को यानि व्यापार-भेद को बनाये रक्खें। अच्छा, विश यू ऑल दी बेस्ट !"

शर्मा जी हाथ मिलाकर अपने ऑफिस की तरफ चले गये। रमेश उनको देखता ही रह गया। जब वे अपने ऑफिस में घुसकर आँखों से ओझल हो गये तो रमेश विचारों में खो गया। उसे यहाँ भी आसार अच्छे नही नज़र आये। यहाँ भी उसे गोलमोल मामला दिखाई दिया। यह सब जानकर मन को बड़ा धक्का लगा। वह सोचने लगा कि बाद में झगड़ा पड़े और फिर तू-तू मैं-मैं हो, इससे ज्यादा अच्छा होगा कि तुरन्त ही वहाँ से चल देना चाहिये। उसके कदम उठते इसके पहिले माँ का चेहरा आँखों के सामने आ गया।

वह चुपचाप फैक्टरी के बड़े हॉल में जा पहुँचा, जहाँ पैकेट तैयार करने और पेकिंग करने का काम हो रहा था। उसे देखना था कि मज़दूर कितने पैकेट रोज बनाते हैं, उसी हिसाब से उनको पैसे मिलते थे। अलग-अलग टेबल पर तरह-तरह की रंगीन छोटी-बड़ी प्लास्टिक की थैलियाँ पड़ी थी और साथ ही हर टेबल पर छोटे-छोटे तराजू रक्खे थे। बड़े-बड़े और खुले बर्तनों में तरह तरह के मसाले रक्खे थे। हर मेज़ पर चार-चार मज़दूर काम कर रहे थे। एक मजदूर मसाला तोलता था, दूसरा प्लास्टिक की थैली में उंडेलता था, तीसरा थैली का मुंह स्टेपलर से बन्द करता और चौथा पैकेट के ढेर को

घूम फिर कर मजदूरों का काम करना देखने लगा। मज़दूर लोग अपने नये सुपरवाईज़र को देखकर अभिवादन करने लगे। स्त्रियाँ लजाकर आँखें नीचे कर लेती थीं। एक मनचले मज़दूर ने छेड़ते हुए कहा—"सलाम साहब।"

"सलाम!"

"कैसा लगा साहब फैक्टरी ?"

रमेश ने उस मजदूर की आँखों में झाँका। वहाँ शरारत ही तैर रही थी। वह बोला—"अच्छी है, पर फैक्टरी के लोग उससे भी अच्छे हैं।"

मज़दूर ने मुस्कराकर कहा—"आप भी तो अच्छे हैं, साब। पर आप एक रूमाल अपने साथ रखिये। दो चार दिन तक यहाँ मसाले का पाउडर आपकी नाक में चढ़ेगा।"

"दो चार दिन के बाद नहीं चढ़ेगा ?"

"फिर तो नाक को आदत पड़ जायेगी साहब।"

"अरे भाई, नाक में क्या चढ़ेगा, यह तो मेरे दिमाग तक जा चढ़ा है।" वह मजदूर हँस पड़ा। आस-पास के दूसरे मज़दूर भी बात के अर्थ को समझे बिना हँस पड़े। रमेश आगे बढ़ गया। एक मज़दूर जो मसाले के पैकेट तोल रहा था, उसके पास जाकर वह रुक गया। उस मज़दूर के एक हाथ में पट्टी बँधी हुई थी और वह एक हाथ से तौलने का काम कर रहा था। हालाँकि एक हाथ से किये जाने वाले उसके काम में किसी भी प्रकार की कमी नहीं थी। रमेश ने उससे पूछा—"क्या हुआ हाथ में ?"

"हड्डी उतर गई है।"

"तो आराम करना चाहिये।"

"आराम करेंगे तो खायेंगे क्या साब !"

रमेश को लगा कि मजदूर में वह खुद किसी रूप में विद्यमान है। उसमें उसे अपना प्रतिबिम्ब नजर आया। अन्तर केवल इतना ही था कि वह मजदूर शारीरिक कष्ट उठाने के साथ-साथ आत्मा के ऊपर बोझ उठाने के लिये भी तैयार था, जबकि रमेश शारीरिक कष्ट किसी भी हद तक उठा सकने के लिये तैयार था, मगर आत्मा पर अंश मात्र बोझ भी रखने के लिए तैयार नहीं

एक मजदूर को उसने कहा—"जा रे नन्दू, मैनेजर साहब को बुलाकर ला।"

नन्दू नाम का मज़दूर मैनेजर को बुलाने चल दिया। चेकर ने चोरी करने वाले मज़दूर का गिरेबान पकड़ रक्खा था। उसके मुंह से खून निकलने लगा। अब तक रमेश भी वहाँ आ पहुँचा। उसने पूछा—"क्या बात है ?"

चेकर ने उसे अपनी श्रेणी और पक्ष का आदमी समझते हुए कहा—"चोरी करता है बेईमान !"

"क्या चुराया है ?"

"मसाले के दो पैकेट।"

"कहाँ हैं पैकेट ?"

"बॉक्स में डाल दिये मैंने।"

"मिले कहाँ ?"

"इसकी जेब में। इस कमीन ने समझा था कि कोई देख नहीं रहा है, मगर मैं जानता हूँ कि कई बार यह आँखों में धूल झोंक चुका है। बच्चू आज कैसे बचेगा। ऐसे चोर और बेईमानों को धक्के मारकर बाहर निकाल देना चाहिये।" कहकर उसने गिरेबान को जोर से हिलाया।

रमेश का माथा भन्ना उठा। डाँटते हुए उसने कहा—"छोड़ उसे।"

चेकर, जिसे नये सुपरवाइजर से अपना पक्ष लेने की उम्मीद थी, चोर का पक्ष लेते देखकर चौंका। हत्प्रभ होकर उसने रमेश की तरफ देखा। रमेश फिर चीख पड़ा—"सुना नहीं तूने, मैं कहता हूँ छोड़ उसका गला।"

चेकर ने गला छोड़ते हुए ऊँची आवाज़ में कहा—"पर साहब, इसने चोरी की है।"

"किसकी चोरी की है ?"

"कम्पनी की।"

सभी मजदूर चुपचाप खड़े तमाशा देख रहे थे। किसी ने भी बीच में बोलने की जरूरत नहीं समझी।

"तो क्या गज़ब हो गया ?"

चैकर रमेश की बात सुनकर चौंका। पास खड़े दूसरे मजदूर भी सुपरवाईज़र की हरकत और बात से हैरान हुए।

चैकर ने अकड़ते हुए कहा—"एक मजदूर ने कम्पनी की चोरी की है, चोरी पकड़ी गई है, चोर आपके सामने है। यह क्या मामूली बात है?"

"बड़ी बात क्या है! एक चोर ने दूसरे चोर के यहाँ चोरी की है, इसमें इतने हैरान होने की क्या बात है। मुझे तो हैरानी इस बात के लिये हो रही है कि एक चोर को दूसरे चोर के यहाँ चोरी करते हुए तीसरा चोर पकड़ने की हिम्मत कैसे करता है!"

चैकर को स्पष्ट रूप से चोर कहा गया था। वह भड़क उठा। आँखें निकालकर उसने कहा—"ऐ साहब, जबान मुँह के अन्दर रखकर बात करना। क्या चोरी किया है हमने?"

"चोरों के लिये मेहनत करना, चोरी ही है और यह काम तुम करते हो। इसलिमे तुम चोर हो। भोली-भाली जनता को ठगने वाले का तुम लोग साथ दे रहे हो, तुम भी ठग हो। पैसे कमाने के लिये, मुनाफ़ाखोरी करने के लिये मासूम जिन्दगियों पर डाका डालने वालों के हाथ तुम मजबूत कर रहे हो, तुम भी डाकू हो। मुल्क के खून और नसों में तुम मिलावट का ज़हर डाल रहे हो, तुम खूनी, हत्यारे हो, गद्दार हो। चोर तो बहुत छोटी गाली है, जो कुछ तुम हो और जो कुछ तुम कर रहे हो, उसके लिये अब तक कोई गाली ही नहीं बनी।"

अब तक मैनेजर शर्मा भी वहाँ आ पहुँचे। उनके आते ही चैकर ने अपनी दास्तान सुनानी शुरू कर दी। रमेश की बात सुनकर कुछ मजदूर भी उत्तेजित हो उठे थे। चैकर की बात सुनकर मैनेजर शर्मा ने रमेश से पूछा—"क्या बात है मिस्टर रमेश कुमार?"

"बात बहुत सीधी है मैनेजर साहब, यह सच होगा कि इस मजदूर ने मसाले के दो पैकेट चुराये होंगे। मेरा कहना सिर्फ इतना ही है कि जहाँ हम खुद लाखों की चोरी कर रहे हैं, वहाँ कोई दो पैकेट की चोरी करे तो हमें बरदाश्त करना चाहिये। आखिर तो यहाँ सभी चोर हैं। एक चोर दूसरे

चोर को चोर कहे, यह बात कुछ अच्छी नहीं लगती।"

"मिस्टर रमेश! आप होश में तो हैं।" मैनेजर चीख पड़ा।

"आपके स्वार्थ, खोटी नीयत और बेईमान स्वभाव ने आपको होश के मतलब गलत समझा रक्खे हैं, इसलिये आपको ऐसा लगता है कि आप होश में हैं और मैं नहीं हूँ। पर सच यह है कि जिस घड़ी आपको होश आ जायेगा, उस वक्त आप यहाँ मेनेजर नहीं रहेंगे।"

"तो तुम यहाँ क्यों और क्या लेने आये हो?"

"गलती और धोखे से आ गया हूँ मैनेजर साहब, जब से आया हूँ, साँस घुटा-घुटा जा रहा है। आपके साथ इन मजदूरों को भी कुदरत कभी माफ नहीं करेगी। अच्छा, मैं चलता हूँ!" कहकर रमेश चला गया और मजदूर अपना काम करने लगे।

२०

माँ की तबियत उस शाम ज़्यादा बिगड़ गई। रमेश अभी तक घर नहीं लौटा था। शीला कॉलेज से लौटते हुए वहाँ आई और ताई के पास ठहर गई। वह पास बैठकर सिर पर हाथ फेरती रही। माँ की खाँसी ऐसी उखड़ी कि दम चढ़ता गया। शीला कभी कमर, कभी सिर तो कभी हाथ पाँव सहलाती। ताई की यह हालत देखकर वह खुद भी घबरा गई। वह बोली—"ताई, मैं घर जाकर पिताजी को बुला लाती हूँ।"

"नहीं शीलू, मास्टर भैया को तकलीफ क्यों देती है। रमेश आता ही होगा। ऐसी कोई बात नहीं।"

पर वह नहीं मानी। कहने लगी—"ठीक है, पिताजी को नहीं बुलाने देती तो मैं भी यहीं बैठती हूँ।"

"अच्छा तो मेरे पास आ, तुझ से कुछ ज़रूरी बातें करनी हैं।"

ताई के मुँह से ऐसी वात सुनकर शीला तनिक घवराई। वह सिरहाने और पास आकर बैठ गई। और वोली—"ऐसी क्या वात है ताई ?"

खाँसी का जोर-दौर कुछ कम हुआ और माँ ने लम्बी-लम्बी साँसें लेते हुए कहना शुरू किया—देख शीलू, मेरी वात से घवराने की जरूरत नहीं है। मैं तो टाल ही रही थी। पर तू वावली है, घर नहीं जा रही इसलिये सोचती हूँ कि कह ही डालूं। अव मेरा ज्यादा कुछ भरोसा नहीं, लगता है कि चल-चलावे का वक्त आ गया है। मेरे वाद रमेश अकेला........"

शीला ने माँ के मुँह पर हाथ रख दिया। उसकी घिग्गी वँध गई। वह रोते-रोते वोली—"ताई, ऐसी वात मत कर, मुझे डर लगता है।"

"इसीलिये कहती हूँ कि तू वावली है। अरे पगली रोने की इसमें क्या वात है। दुनिया में होता आया है, मैं क्या हमेशा वैठी ही रहूँगी। रो मत, और मेरी वात सुन।" माँ ने उसका हाथ अपने हाथ में लेकर कहा।

"नहीं सुनूंगी। विल्कुल नहीं सुनूंगी! ऐसी वातें हरगिज-हरगिज़ नहीं सुनूंगी।" आँसू पोंछते हुए शीला वोली।

हताश होकर हाथ तकिये पर गिराते हुए माँ ने कहाँ—"जाने दे, तू ही मेरी वात सुनने के लिये तैयार नहीं है तो और कौन सुनेगा।"

"पर ताई तू कोई अच्छी वात कर न, मरने-जीने की वातें क्यों करने लगी।"

दूसरी तरफ करवट लेते हुए माँ ने कहा—"आजकल के लड़के लड़कियाँ कितने कच्चे हैं कि सच्ची वात सुनने से डरते हैं।"

शीला चुपचाप आँसू पोंछती रही। माँ भी करवट लिये चुपचाप पड़ी रही। कुछ क्षण खामोशी में ही वीते। शीला को लगा कि ताई दुःखीमना होकर चुप हो गई है। वह वोली—"अच्छा ताई, वोल मैं सुनूंगी।"

ताई ते करवट लेकर मुँह शीला की तरफ किया और कहने लगी—"शीलू, मैं तेरा मन दुःखी करना नही चाहती वेटी, पर क्या करूँ अन्दर कुछ है जो मैं तुझ से कहना चाहती हूँ। तू तो मेरी वहुत अच्छी, सयानी और समझ-दार वेटी है, मेरी वात नहीं सुनेगी ?"

शीला की आँखों में फिर से आँसूओं का ज्वार उमड़ा। उसने आँसूओं पर काबू पाने की कोशिश करते हुए कहा—सुनूँगी ताई, मगर मुझे रुला मत।" कहकर शीला फिर रो पड़ी।

माँ ने प्यार से उसका हाथ उठाकर चूमते हुए कहा—"इतना कच्चा बनकर दुनिया में कैसे जिया जायेगा शीलू, हिम्मत और हौसले नहीं होंगे तो दुनिया जीने नहीं देगी।"

शीला ने अपने को काबू करते हुए कहा—"हिम्मत रखने की तेरी बात से मेरी हिम्मत टूटती है। अच्छा बोल, क्या कह रही थी।"

माँ ने बैठने की कोशिश की। शीला ने सहारा देकर उसे बैठाया और पीछे तकिये की टेक लगाते हुए कहा—"पड़े-पड़े कह देती, जो कहना है।"

बैठते ही माँ को फिर खाँसी का ज़ोर चढ़ा। खाँसने-खाँसते मुँह लाल हो गया और गर्दन की नसें तन गईं तो वह अपने-आप ही निढाल होकर लुढ़क गई। शीला परेशान होकर कभी हाथ सहलाती कभी छाती पर हाथ फेरती। सिरहाने मेज़ पर रक्खी दवाई की शीशी में से उसने एक टूटे हुए कप में ज़रा सी दवा उँडेली और माँ के मुँह में डाल दी। दवा गले के नीचे उतरी तो खाँसी का ज्वार भी तनिक उतरा।

शीला ने कहा—"ताई, अब तुम सोई रहो। और बात-बात मुझे बाद में कह देना, इस वक्त तुम्हारी तबियत ठीक नहीं है।"

माँ ने उसकी ओर अर्थपूर्ण दृष्टि से देखकर कहा—"तबियत ठीक नहीं, इसीलिये तो ज़रूरी हो गया है कि अपनी बात तुरन्त कह डालूँ। ऐसा न हो कि मन की बात मन में ही रह जाये। कौन जाने बाद में कह भी सकूँ या न कह सकूँ।"

शीला गुस्सा होकर बोली—"देख ताई, तू फिर मुझे रुलाने की बातें कर रही है, ऊपर से हौसले रखने की बात भी करती है।"

"तू हौसला रखने की बात पर ही ध्यान दे, रोने-धोने की क्या ज़रूरत है। अच्छा सुन, मैं कह रही थी कि मेरे बाद रमेश अकेला रह जायेगा। पता नहीं, मास्टर भैया तेरे लिए क्या फैसला करें। दुनियादारी के हिसाब से वे

नहीं चाहेंगे कि तू रमेश के पल्ले बाँध दी जाये। ऐसे में जैसे तेरे पिताजी कहें, तू वैसा ही करना।"

शीला की आँखें फिर से भरने लगीं। उसने कहा—"ताई, तूने सिर्फ बात सुनने के लिये कहा है, बात मानने के लिये नहीं कहा। बात मानना न मानना मेरी मर्जी पर है।"

"रही न पगली की पगली! मेरी बात पूरी सुनेगी भी या नहीं।"

"क्या सुनूँ तेरी बात, बेकार की बातें करने लगी है तू! क्या-क्या सोचती रही है। अभी से क्या मरने की ठान ली। अपने बेटे को बहुत बड़ा आदमी बनाना चाहती है न तू?"

"नहीं शीलू नहीं, मैं अपने बेटे को बड़ा आदमी बनाना नहीं चाहती, कभी नहीं चाहा मैंने ऐसा!"

शीला आश्चर्य से उसका मुँह तकने लगी। माँ ने उसे इस तरह तकते हुए देखा तो बोली—"सच कहती हूँ मैं। मैंने कभी नहीं सोचा और चाहा कि मेरा बेटा बड़ा आदमी बने, मैंने तो भगवान से हमेशा यही प्रार्थना की है कि मेरा बेटा एक अच्छा आदमी बने।"

शीला फिर चौंकी। इस बार उसकी दृष्टि का भाव बोल रहा था कि ताई कहीं पागल तो नहीं हो गई। वह बोली—' ताई बड़े आदमी और अच्छे आदमी में फर्क है क्या?"

"पहिले नहीं था, अब तो बहुत फर्क है।"

"कैसी-कैसी बातें करने लगी है आज!"

"मैं ठीक कहती हूँ शीलू, अब बड़ा आदमी होना बहुत बड़ी बात नहीं रही। कोई भी आदमी थोड़े बहुत हाथ-पाँव फेंक कर बड़ा हो ही जाता है, मगर अच्छा आदमी होना आज बहुत मुश्किल काम हो गया है। जरूरी नहीं कि हर अच्छा आदमी बड़ा आदमी भी हो, हाँ कभी-कभी बड़ा आदमी भी अच्छा हो जाता है। मैं अपने रमेश को अच्छा आदमी बनाना चाहती हूँ, बड़ा आदमी नहीं।"

"अच्छा यूँ ही सही, तो बेटा अच्छा आदमी बन चुका है?"

माँ ने अत्यन्त लाचारी और नाचारी से हाथ आगे फैलाकर कहा—"तू ही बता क्या कसर है। किसी की बुराई में नहीं, किसी के लेन-देन में नहीं। अपने ईमान-धर्म पर कायम है। झूठ और मक्कारी से अपना स्वार्थ पूरा करना भी नहीं चाहता। बता, ऐसे कितने लोग है आज की दुनिया में ?"

शीला को लगा कि ताई ने जो कहा है ठीक ही कहा हैं। एक अच्छे आदमी में जितने गुण होते हैं, वे सभी गुण रमेश में है। अलग-अलग आदमियों के शब्दकोष में अच्छे और बड़े के अलग-अलग अर्थ हैं, लेकिन मानवीय मूल्यांकन करने वाले शब्दकोष में तो एक शब्द के लिये एक ही अर्थ है। एकाएक शीला का मन एक सुखद अनुभूति से गुदगुदा गया। रमेश के अच्छे होने के सुखद भाव ने उसके सारे शरीर को रोमांचित कर दिया।

माँ ने उससे पूछा—"क्या सोचने लगी तू।"

"कुछ नहीं।" प्रकृतिस्थ होकर वह बोली।

"तो फिर सुन मेरी बात ! देख, मास्टर भैया जैसा कहें, वैसा ही करना उनका दिल मत दुःखी करना।"

"तो अपना और रमेश का दिल दुःखी कर लूँ ?"

अनर्थ के भय से आशंकित माँ की दृष्टि शीला की तरफ उठी। वह बोली—"सन्तान को माँ-बाप के लिए पहिले सोचना चाहिये।"

"और मां-बाप को सन्तान के लिए बाद में सोचना चाहिये ?"

माँ उत्तेजित हो उठी—"तू वहस ही करती रहेगी या मेरी बात भी सुनेगी ?"

"ताई, अभी तेरी तबियत ठीक नहीं है, इसलिये तेरी बातें भी ठीक नहीं हैं। अभी तू आराम कर, जब तबियत ठीक हो जाएगी, तब तेरी सभी बातें सुनूँगी और आराम से सुनूँगी।"

हताश होकर माँ ने एक ओर करवट ले ली और सोने की भंगिमा में शरीर को शिथिल कर दिया। तभी कटे हुए तने की तरह गिरता-पड़ता रमेश आ पहुँचा। उसे देखकर शीला उठ खड़ी हुई और बोली—"सुनो ताई की तबियत ठीक नहीं है, तुम इसके पास बैठो, मैं कल सुबह आऊँगी।"

शीला चली गई। माँ ने करवट लेकर देखा कि रमेश निढाल होकर कुर्सी पर बैठा रहा है। उसने उठने की कोशिश करते हुए पूछा—"क्यों रे रमेश! क्या बात है?"

"कुछ नहीं माँ, सोई रहो तुम!" और उसने उठकर मां को फिर से सुला लिया। माँ कुछ बोले, इससे पहिले उसने पूछ लिया—"कैसी तबियत है माँ!"

"बस है ही है!"

सुनकर रमेश एकदम सचेत हो गया। उसने एक अर्थपूर्ण टकटकी से माँ को देखा। माँ ने हैरान होकर पूछा—"ऐसा क्या देखता है रे!"

"मैं देख रहा हूँ माँ कि जो हाल तुम्हारा हुआ है, वही मेरा भी होगा।"

"मतलब?"

"मतलब यह कि ईमानदारी की राह पकड़ कर न तो तुम्हारे तन को पूरे कपड़े मिले, न पेट को रोटी और न ही बीमारी को इलाज। सच्ची बात तो यह है माँ, कि गरीब आदमी को ईमानदारी के झंझट में पड़ना ही नहीं चाहिये। यह काम रईसों का ही है। दरवाजे के भीतर कुछ भी हो, मगर दरवाजे के बाहर ईमानदारी और शराफत पैसों वालों की ही निभ सकती है।"

"लगता है, नई जगह फिर कुछ हुआ है?"

"होता ही है और होता ही रहेगा। सौ चोरों के बीच एक ईमानदार कब तक, कैसे और कहाँ तक जी सकेगा? या तो उसे समझौता करना पड़ेगा या मरना पड़ेगा।"

माँ को खाँसी उभर आई। खाँसी का कारण था—उत्तेजना। खाँसते-खाँसते मुँह लाल हो गया। रमेश उसे सहलाने लगा। कुछ काबू पाया तो वह गला साफ करते-करते बोली—"समझौता कभी मत करना, बेटे। मरना, समझौता करने से ज्यादा अच्छी स्थिति है। बोल बता, तू समझौता तो नहीं करेगा? ऐसा तो नहीं होगा कि इधर मैं मरूँगी और उधर तू समझौता कर लेगा? बोल जवाब दे मुझे।"

माँ की खाँसी और उत्तेजना दोनों एक साथ उखड़ पड़े। वह बोलती

गई—"अगर ऐसा है तो फिर मैं नहीं मरूँगी। मुझे जिन्दा ही रहना पड़ेगा। बोल, जवाब दे।"

रमेश ने उसे सँभालते हुए जबरदस्ती बिस्तर पर लिटाया और सिर सहलाते हुए कहने लगा—"कैसी बातें करती है माँ। तबियत ठीक नहीं है और मरने-जीने की बातें ले बैठी।"

माँ फिर तड़प उठी और बोली—"मुझे मर कर भी चैन नहीं मिलेगा रमेश, मेरी रूह तड़पा करेगी। मैं भटकती ही रहूँगी। अगर तूने समझौता कर लिया तो मेरी आत्मा को शान्ति नहीं मिलेगी।"

इस बार माँ को जैसे किसी ने बहुत जोर से झकझोर दिया। वह तड़प उठी। खाँसी उठी और उठती चली गई। रमेश तनिक घबराया, मगर शीघ्र ही अपने स्नायु मंडल पर पूरा नियंत्रण रखते हुए वह स्थिति सँभालने में जुट गया। माँ के सिरहाने तकिये लगा कर वह उसके हाथ-पाँव के तलवे सहलाने लगा। कुछ देर में खाँसी का जोर-दौर कम हुआ।

रमेश माँ से बहुत कुछ कहना चाहता था और माँ भी ढेर सी बातें अपने बेटे से कहना चाहती थी। मगर दोनों चुप थे। माँ आँखें बन्द किये क्लान्त और स्थिर स्थिति में पड़ी थी। रमेश तलुवे सहलाते हुए शिथिल होकर उनींदयाने लगा था। बीच-बीच में माँ खाँस उठती तो वह फिर से तलवे सहलाता और नींद फिर से उसे दबोच कर उसके हाथों को निष्क्रिय कर देती।

एक झटके के साथ रमेश एक ओर लुढक गया। बैठे-बैठे नींद में कब उसका संतुलन बिगड़ा, यह उसे भी पता नहीं चला। हड़बड़ाकर वह खड़ा हो गया। माँ की तरफ देखा तो कुछ हैरान हुआ। उसकी नब्ज देखी, नाक के पास हाथ रखकर सांस सँभाला, मगर कहीं कुछ भी नहीं था। बिजली की तेजी की तरह वह सारे शरीर को टटोल गया, मगर प्राण शरीर के किसी अंग में भी नहीं थे। एक दर्दभरी आवाज बहुत ही धीरे से निकली—माँ! बस क्या!! मुझे अकेला छोड़कर चली गई न ?"

बौखलाई हालत में उसने सामने दीवार की तरफ देखा। महात्मा गांधी का मुस्कराता हुआ एक चित्र फ्रेम में लटक रहा था। वह धीरे से दीवार के पास गया और वह फ्रेम उलटते हुए बुदबुदाया—"बापू, तुम्हारे सपनों के

भारत में एक ईमानदार इंसान की माँ विना इलाज मर गई है, तुन जैसे इंसान का चित्र यह सव देखकर सजीव न हो उठे, चीख न पड़े, इसलिये तुम्हारा मुँह मैं दीवार की तरफ कर रहा हूँ।"

२१

सुवह मास्टर जी ने आकर देखा कि रमेश अपनी माँ के पास विक्षिप्त-सी दशा में वैठा हुआ है। वह एकटक माँ के चेहरे को देख रहा था। स्वयं उसका चेहरा निर्भाव हो गया था। यह सव देखकर मास्टर जी पहिले तो चौंके, मगर स्थिति समझते उन्हें देर नहीं लगी। उन्होने रमेश को झंझोड़ा। रमेश ने उनकी ओर ऐसा देखा जैसे गायक को स्वर साधते हुए किसी ने टोक दिया हो।

"कव से वैठे हो इस तरह ?"

रमेश की आँखें और चेहरा उनकी ओर उठा, मगर सभी कुछ निर्भाव, सूना-सूना, खाली-खाली !

मास्टर जी तनिक सहमे ! अपने को वटोरकर उन्होंने रमेश के कंधे पर हाथ रखकर कहा—"उठो रमेश ! अव आगे की वात सोचो।"

मोहल्ले में विजली की तरह खवर फैल गई कि रमेश की माँ नहीं रही। उस नारी के भव्य व्यक्तित्व से जो लोग प्रभावित थे, वे जीते जी चाहे आकर न झाँके हों, लेकिन मरने की खवर सुनते ही तुरन्त आ पहुँचे। रमेश अपनी वी० ए० की डिग्री का वड़ा सा प्रमाण-पत्र लेकर कव और कैसे वनवारीलाल सराफ की दुकान पर पहुँचा, यह दूसरे किसी को तो क्या, खुद उसको भी नहीं मालूम पड़ा। वनवारीलाल के लिये रमेश की या उसकी डिग्री की कोई कीमत नहीं थी, लेकिन मौके की नजाकत को समझते हुए उसने डिग्री का कागज रखकर रमेश को सौ रुपये थमा दिये। रुपये लाकर उसने

मास्टरजी के हाथों में रक्खे तो वे उसका मुंह ताकने लगे ।

इकट्ठे हुए लोग रमेश की खामोशी पर हैरान थे । कुछ समझदारों ने कोशिश की कि रमेश को बातों में लगाकर कुछ बोलवाया जाये, मगर सभी कोशिशें बेकार हुई । रमेश तो जैसे सुन्न हो गया था । अर्थी ले जाई जाने लगी तो उसे जबरदस्ती उठाकर सहारा देकर साथ ले जाया गया ।

श्मशान भूमि पर जाकर वह फिर चुपचाप बैठ गया । उसकी यह हालत देखकर कुछ लोग कानाफूसी करने लगे । एक ने तो दबी जबान में कह दिया—"लगता है पागल हो गया है ।"

तभी एक दूसरे अनुभवी आदमी ने अपना अनुभव बतलाते हुए कहा—"कोई पागल-सागल नहीं हुआ है, बन रहा है । ना होत में ऐसा खेल करना ही पड़ता है ।"

एक ने प्रतिवाद किया—"पर रमेश ऐसा नहीं ।"

अनुभवी ने कहा—"दुनिया में कोई भी ऐसा नहीं होता । वक्त मार-मार कर बना देता है । अब यह भाई कुछ काम-धन्धा तो करता नहीं । नौकरी पर जाता है फिर पाँच दिन के बाद घर आ बैठता है । बेचारी माँ ने किन मुश्किलों से इसे पढ़ाया लिखाया, कुछ काबिल बनाया, इस उम्मीद में कि पाँव पर खड़ा होकर बुढ़ापे में उसकी भी कुछ सेवा करेगा । पर सेवा तो दूर यह तो माँ का इलाज भी नहीं करा सका । बेचारी बुढ़िया बिना इलाज ही मर गई । लोगों को देने के लिये जवाब नहीं है, इसलिये भाई ने पागल होने का ढोंग रचाया है, सचमुच में है कुछ भी नहीं !"

चिता तैयार हो चुकी थी । दाह देने का समय आया । रमेश को बुलाया गया तो वह टकटकी बाँधकर देखने लगा । मास्टरजी ने झुंझलाकर बड़ी बेरुखी से उसका हाथ पकड़कर उठाया । अकेले उनसे नहीं उठा तो दूसरे दो आदमियों ने भी रूखे ढंग से सहारा देकर दाह देने की रस्म पूरी करवाई । सब क्रिया-कर्म हाथ पकड़ कर ही करवाया गया । सब काम पूरे हो चुके और चिता ठंडी हो गई तो लोग उसे लेकर घर लौट आये ।

मोहल्ले के लोगों में से कुछ एक भले लोग भी थे जो कि कम पढ़े-लिखे

थे। जिनकी नज़र में रमेश ढोंगी नहीं, सचमुच पागल था। वे लोग उसके पास बैठकर उसे बातों में उलझाने की कोशिश करने लगे। मगर, सभी कोशिशें नाकामयाब रहीं। मोहल्ले की कुछ औरतें भी इकट्ठी हो गई थीं। रमेश की वर्तमान स्थिति की अपेक्षा रमेश की माँ के अतीत की स्मृति उनके लिये अधिक विषादपूर्ण थी। एक बुढ़िया रोते-रोते रमेश को देखकर उसके सिर पर हाथ रखकर बोली—"माँ के गम में बेचारा बावला सा हो गया है।"

एक प्रौढ़ा ने कहा—"रमेश, ऐसे हिम्मत हारने से काम कैसे चलेगा। हमेशा किस के माँ-बाप बैठे रहते हैं। उसे तो जाना ही था। आज नहीं तो दो दिन बाद जाती। अब यह सदमा दिल को लगाकर मत बैठो।"

रमेश ने तो जैसे कुछ सुना ही नहीं। उस प्रौढ़ा ने बगल में खड़ी बुढ़िया की तरफ देखकर मुँह बिचका दिया और हाथ की पाँचों उँगलियां हवा में नचाकर अपनी नासमझी का इज़हार किया।

शायद सभी सहानुभूति की सीमा पर आकर थक गये थे। अपनी बनाई हुई सीमा से आगे जा सकना मोहल्ले वालों के वश की बात भी नहीं थी। एक-एक करके सभी अपने घरों को चल दिये।

रमेश अब अकेला रह गया। नीचे बिछी हुई दरी के किनारे के धागों को खींच-खींच कर मुंह में रखने लगा। कभी छत की तरफ देखता तो कभी गांधी जी की उल्टी की हुई तस्वीर की तरफ देखता। वह सचमुच ही अपने मस्तिष्क का सन्तुलन खो चुका था। माँ के मरने पर कोई पागल नहीं हो जाता, मगर रमेश की माँ जिन हालतों में मरी वहाँ रमेश जैसे नौजवान का पागल हो जाना स्वाभाविक ही है। माँ इसलिये मर गई कि वह उसका इलाज नहीं करा सका और इलाज इसलिये नहीं करा सका कि उसके पास पैसे नहीं थे और पैसे इसलिये नहीं थे कि उसके पास नेकी और ईमानदारी थी। बदी और बेईमानी से वह भी पैसे कमा सकता था, मगर उसकी माँ को नेकी और ईमान प्राणों से भी ज्यादा प्यारे थे। एक ईमानदार, नेक और अच्छाई में यकीन रखने वाले इंसान की माँ बिना इलाज, अभाव के कारण मर गई, इस विचार ने रमेश के दिल-दिमाग को ऐसा ठस कर दिया था कि वह अन्य सभी विचारों

से कट-छँट कर दूर जा पड़ा था। उसका दिमाग बस सिर्फ एक ही बात सोच सकता था, माँ मर गई, क्योंकि वह ईमानदार बेटे की ईमानदार माँ थी।

शीला के आने की आहट से भी रमेश को कुछ भान नहीं हुआ। शीला दुःख मिश्रित हैरानी से देखती हुई उसके पास आकर बैठ गई। शीला ने अपना हाथ उसके कन्धे पर रक्खा और बोली—"सुनो!" पर जहाँ मस्तिष्क की गति दिशा बदल चुकी हो, वहाँ सुनने का प्रश्न ही नहीं उठता। अपने स्पर्श और शब्दों की कुछ भी प्रतिक्रिया होते न देखकर शीला फूट कर रो पड़ी। रोते-रोते उसने रमेश का हाथ अपने हाथ में लेकर कहा—"तुम चुप क्यों हो, कुछ बोलते क्यों नहीं।"

मगर चुप होने वाले ने बोलना तो दूर, उसकी तरफ देखा भी नहीं। अब तो शीला सहम गई। आती-जाती मोहल्ले की औरतों से उसने जो कुछ सुना था, वह सच ही दिखाई पड़ने लगा। उसने रमेश को ज़ोर से झकझोर दिया, लेकिन रमेश के शरीर का खून और मस्तिष्क की कोषिकाएँ जैसे शान्त और ठंडे हो गये थे। इस बार शीला के मुंह से एक चीख निकली और वह उठकर वहाँ से भाग गई।

शीला की चीख और उसका उठकर भागना भी रमेश की खामोशी को प्रभावित नहीं कर सके। उसकी आँखों के सूनेपन में मरघट जैसी भयंकरता उभर आई थी। लगता था आँखें नहीं हैं, बल्कि दो कुएँ हैं, जहाँ अनगिनत लाशें भरी पड़ी हैं, मगर कोई आवाज़ नहीं है। शब्द भय को भगाता है जबकि शब्दहीनता भय को जगाती है। रमेश की शब्दहीनता उसके पास आने वाले हर व्यक्ति में भय का भाव जागृत करने लगी।

एकाएक रमेश उठा और गांधी जी की उल्टी तस्वीर के पास जाकर बोला—"अब क्यों मुँह छिपा रक्खा है, वह तो चली गई।"

"बोलोगे नहीं, शरमा रहे हो क्या?"

वह बड़बड़ाने लगा।

"छोड़ो शरम, इधर देखो मेरी तरफ।"

फिर उसने फ्रेम को पलट दिया। गांधी जी का मुस्कराता हुआ चित्र

सामने आ गया।

वह फिर बड़बड़ाने लगा—"अब शरम और डर की कोई बात नहीं, वह चली गई। तुम दुखी मत होओ, तुम दुखी होओगे तो दुःख का समुद्र तुम्हें घेर लेगा। तुम सिर्फ तमाशा देखो।"

शीला डा० कपूर को लेकर वहाँ आ पहुँची वह बहुत घबराई और सहमी हुई थी। आँखें अभी तक तर थीं। रमेश का बड़बड़ाना दोनों ने ही सुन लिया था। डा० कपूर ने पास आकर रमेश का हाथ पकड़ा और बोला—"रमेश बाबू।"

"मैं अब कुछ नहीं कर सकता, वह चली गई।"

रमेश का यह जवाब सुनकर शीला तो फूट ही पड़ी। डॉ० कपूर ने उसे समझाते हुए कहा—"ज़रा शान्ति से काम लो भई, रमेश माँ के सदमे से अपना दिमागी बैलेंस खो चुका है। दिमाग पर ज़रूरत से ज्यादा वज़न पड़ा है। मामला बहुत ही नाज़ुक है।"

इतना कहकर डॉ० कपूर ने फिर रमेश को कहा—"हेलो रमेश।"

"रमेश नहीं गया है, रमेश की माँ गई है, चली गई है।"

संभलती हुई शीला फिर अनियंत्रित हो गई। डॉक्टर को कहना पड़ा—"तुम बाहर चली जाओ।"

शीला ने जबरदस्ती करके अपने पर काबू किया।

डॉक्टर ने रमेश के कंधे पर हाथ रखकर कहा—"रमेश, मैं हूँ डॉ० कपूर।"

"वह तो ठीक है, पर वह तो चली गई।"

इस बार शीला को बाहर जाना ही पड़ा।

"कौन चली गई रमेश ?" डाक्टर ने प्रश्न किया।

"बस चली गई, कहाँ गई, यह मुझे नहीं मालूम। किस रास्ते से गई है, अगर यह मालूम हो जाये तो मैं भी चलते-चलते वहाँ जाकर उसे पकड़ लूँ। मगर.........मगर...... "

वह चुप हो गया।

"रास्ता मुझे मालूम हैं, आओ मेरे साथ।"

"नहीं-नहीं, किसी को शरम नहीं आयेगी, कुछ फायदा नहीं।"

बहुत मेहनत और कोशिश के बाद डाक्टर उसे कुर्सी पर बैठा सका। शीला अपने आँसू पोंछकर भीतर चली आई थी। डाक्टर उसे टटोलकर देखने की कोशिश करने लगा। रमेश फिर बड़बड़ाया—"मैं नहीं खाऊँगा खाना, मुझे भूख नहीं है।"

डा० कपूर ने शीला से कहा—"यह तो साफ है कि पागलपन का दौरा पड़ गया है, पर अब इन्हें संभालना बहुत जरूरी है। घर में और कौन-कौन हैं?"

"कोई भी नहीं, सिर्फ एक माँ ही थीं।"

"आप इनके रिश्ते में··· ?"

"जी हाँ, हम पड़ौसी हैं, रिश्तेदार जैसे ही।"

"मगर इन्हें संभाल सकना, आपके वश का काम नहीं है। हो सकता है कि पागलपन का जोर बढ़े। ऐसी हालत में इन्हें दो चार मज़बूत आदमी ही काबू कर सकते हैं।"

शीला सिसकते हुए कहने लगी—"बड़ा मुश्किल है। दो चार तो क्या एक भी ऐसा आदमी नहीं है। कोई कब तक अपना काम छोड़कर इन्हें सम्भालेगा।"

"तो फिर हालत और भी खराब हो जायेगी।"

डॉक्टर की बात सुनकर शीला फिर रो पड़ी। रोते हुए उसने पूछा—"अब इससे ज़्यादा और क्या हालत खराब होगी?"

"अगर अच्छी तरह सम्भाला नहीं गया तो सड़कों पर जिस तरह आम पागल कागज-कचरा चुराते फिरते हैं और बच्चे लोग उन्हें पत्थर मारते हैं, वैसी हालत हो जाएगी।"

शीला काँप उठी। रमेश को ऐसी स्थिति में कल्पना करके उसका मानस हिल उठा। वह बोली—"नहीं, डाक्टर साहब, ऐसा हरग़िज नहीं होगा। कोई ऐसा रास्ता बताईये कि ये फिर से अपने होश-हवास में आ जायें।"

"फिर तो एक ही रास्ता है।"

"बताईये, मुझ से जो बनेगा में करूँगी।"

"वातावरण बदल दिया जाय और इन्हें कुछ अधूरी व नई चीजें दिखाई जाँये। लेकिन पहिले आप मुझे यह बताईये कि माँ के मरने के अलावा क्या और भी कोई सदमा या दुःख इन्हें सताता रहा है ?"

शीला ने एक लम्बी साँस ली और कहा—"इनके अपने सिद्धान्त और आदर्श ही इनका सबसे बड़ा दुःख है।"

"मैं समझा नहीं, आप इस बात को खुलकर कहिये।"

'पिता तो पहिले ही भगवान को प्यारे हो चुके थे। बस एक माँ थी, जिसने सिलाई करके इन्हें पढ़ाया लिखाया और साथ ही जीवन में ईमानदार बने रहने का विषैला आदर्श भी गले से उतार दिया। बी० ए० पास करने के बाद कई जगह नौकरियाँ कीं, मगर ईमानदारी और नेकी का विषैला आदर्श और सिद्धान्त सभी जगह ले डूबा। समझौता करने के लिये न माँ तैयार थी, न माँ का बेटा! बदी और बेईमानी के बिना जिन्दगी रुक-सी गई। पैसों की कमी के कारण माँ का ईलाज भी नहीं किया जा सका। माँ चली गई है, मगर ईमानदारी और नेकी की लोह-जंजीरें पाँव में डाल गई है। उन जंजीरों का बोझ और माँ के सदमें की मार से जो कुछ हुआ वह आपके सामने है।"

डॉ० कपूर बड़े ध्यान से शीला की बात सुन रहे थे। उसकी बात खत्म हुई तो दर्द और सहानुभूति के मिश्रत स्वर में वे बोल पड़े—"माई गुडनेस! कितनी अजीब, कितनी दर्दनाक और दुःखभरी कहानी है। एक आदमी इसलिये पागल हो गया कि वह ईमानदार था और बेईमानी से समझौता करना नहीं चाहता था। माँ भी इसीलिये मर गई कि ईमानदारी के कारण इलाज नहीं कराया जा सका। ओफ! कितना भयंकर है हमारा यह समाज!"

शीला की आँखों में भी समाज के लिये एक घृणाभाव तैर गया। वह बोली—"न सिर्फ भयंकर बल्कि बहुत ही निर्दय और स्वार्थी भी! डॉक्टर साहब, मेरा ख्याल है दुनिया में हर वह आदमी जो ईमानदारी से हटना नहीं चाहता था, पागल हो गया। दुनिया में पागल वे ही लोग होते होंगे जो

बेईमानी से जोड़ नहीं कर सके। पर बेईमानी की कीमत पागलपन से चुकाने वाले कितने रमेश हैं, हमारे समाज में। जो लोग पागल होने से डरे, उन लोगों ने समझौता कर लिया और वे बेईमान हो गये। आदमी को दोनों में एक तो होना ही पड़ता है, या तो वह पागल होने के लिये तैयार हो या फिर बेईमान हो जाय। तीसरा तो कोई रास्ता ही नहीं है।"

समाज के इस नाजुक पहलू की ऐसी सूक्ष्म व स्पष्ट व्याख्या एक लड़की के मुँह से सुनकर डॉ० कपूर हैरानी से उसका मुँह देखने लगे। डॉक्टर को इस तरह देखते हुए देखकर शीला ने पूछा—"मैंने कुछ गलत कहा, डॉक्टर साहब!"

"नहीं, है तो कुछ ऐसा ही, मगर इतना सब ज्ञान और समझ तुम्हें कहाँ से·······।"

"यहीं से! आँखों के सामने ही तो है, जिन्दा मिसाल!"

"एक बात पूछूँ?"

"पूछिये।"

"तुम्हें इनसे इतनी हमदर्दी क्यों?"

"ये मेरे मंगेतर हैं।"

डॉक्टर कपूर तो चौंक ही पड़े। रमेश कुर्सी से उठकर गाँधीजी की तस्वीर को उलट-पलट कर रहा था। दोनों का ध्यान उस तरफ गया। डॉ० ने हैरान होकर कहा—"ताज्जुब है कि हमारे देश में और सन तेहत्तर में ऐसी भी लड़की है जो मंगेतर के लिए, ऐसी स्थिति में भी अपनी पूत-भावना को कायम रक्खे हुए है।"

"नारी-समाज और नारी-हृदय बहुत दूर तक फैला हुआ है डॉक्टर साहब। आपको एक-से-एक बढ़कर अनोखे प्राणी इस देश की मिट्टी में मिल जायेंगे। खैर! आप मुझे बताईये कि अब मुझे इनके लिये क्या करना होगा?"

डॉक्टर ने अपना बेग संभाला और चलने की तैयारी करते हुए बोला—"पहली बात तो यह ध्यान में रखिये कि इन्हें अकेला बिल्कुल नहीं छोड़ा जाय। दूसरी बात यह कि इनके सामने कोई ऐसी बात या जिक्र न हो जिससे

इन्हें उत्तेजना मिले। फिलहाल आप इतना ही करें, फिर मिलने पर मैं आगे की बात बताता रहूँगा।"

डॉक्टर कपूर चलने लगे। शीला बोली—"मैं आपकी फ़ीस डिसपेन्सरी में पहुँचा दूंगी।"

"इट्स ऑल राईट!"

डॉक्टर चला गया तो शीला रमेश के पास आकर उसका सिर सहलाने लगी। प्यार, ममता, सहानुभूति, पीड़ा और अपनत्व की मिली-जुली भाव-रेखाएँ उसके चेहरे पर खींच आईं। रमेश अभी तक गाँधीजी की तस्वीर को ही उलट-पलट कर रहा था। उसकी क्रिया-कलाप देखकर शीला का मन हाहाकार करने लगा, मगर धीरज से काम लेने के सिवाय दूसरा रास्ता नहीं था। धीरे-धीरे वह रमेश को पलंग के पास ले आई। वहाँ उसे बैठाकर वह पानी लेने रसोई की तरफ गई। वापिस लौटकर आई तो देखा कि रमेश कमरे में नहीं है। वह भागकर दरवाजे के पास आई तो उसने रमेश को गली के बाहर लपकते हुए देखा। वह गिलास फेंककर उसके पीछे भागी। मगर सामने मास्टर जी आ गये। उन्होंने डपट कर कहा—"शीला!"

शीला ने सुना-अनसुना किया।

वे फिर चीखे—"ठहर जाओ, शीला।"

शीला ठहरी और पिताजी की ओर मुड़कर बोली—"पिताजी मैं सिर्फ आपको कहने के लिये ठहरी हूँ कि मैं नहीं ठहरूँगी।"

इतना कहकर वह रमेश के पीछे भागी। मास्टर जी ने इधर-उधर दृष्टि घूमाकर देखा कि बाप-बेटी की बात किन-किन लोगों ने सुन ली है। कई आँखें पलट कर इधर-उधर देखने लगीं।

उन्होंने देखा कि शीला गली से निकल कर नंगे पाँव ही सड़क की तरफ रमेश का पीछा करती हुई भागी जा रही है।

"मत खाओ, मर जाओगे।" कहने के साथ ही रमेश ने उसके पत्ते पर हाथ मारा और पत्ता दही-बड़े समेत नीचे जा गिरा। सड़क के किनारे चाट पकौड़ी का खोमचे वाला रमेश की इस पागलाना हरकत पर खीझ उठा। दो-तीन दूसरे ग्राहक जो वहाँ खड़े होकर चाट खा रहे थे, कुछ पीछे हट गये। जिस आदमी के हाथ से पत्ता गिराया गया था, वह कुछ समझदार किस्म का आदमी था। उसे गुस्सा नहीं, रमेश पर रहम आ गया। उसने हाथ झाड़ते हुए कहा—"बेचारा!"

पर खोमचे वाला चीख पड़ा—"अबे भाग यहाँ से!"

"मर जाओगे, मर! जहर है इसमें!! अच्छा मरना चाहते हो तो, मरो! मर जाओ! मरना ही अच्छा है!"

रमेश की बकवास को अपनी दुकानदारी में बाधक होते देखकर खोमचे वाला कुछ गाली देने की तैयारी कर रहा था कि शीला ने आकर उसका हाथ पकड़ लिया।

"आओ घर चलो।" कहकर शीला ने उसे ले चलने की कोशिश की। वहाँ खड़े लोग समझ गये कि आदमी पगला गया है और घर वालों से बचकर बाहर चला आया है। सभी चुपचाप तमाशा देखते रहे। एकाएक रमेश हाथ छुड़ाकर आगे भागा और एक दुकान के सामने जाकर चीखने लगा—"भागो! भागो!! छत गिर जायेगी, मर जाओगे, दब जाओगे!"

शीला भी उसके पीछे-पीछे भागी। तमाशबीनों की संख्या भी बढ़ने लगी। एकबार तो दुकान में बैठे सभी लोग घबरा गये मगर उसके पागल होने का ज्ञान होते ही सब तिरस्कार की दृष्टि से उसे देखने लगे। शीला रमेश को पकड़ पाती, इससे पहिले ही वह आगे बढ़ गया। एक कलिनिक के सामने जाकर कहने लगा—"क्यों डॉक्टर साहब, मेवा खाओगे ताजे मेवे! आज ही काबुल से आये हैं। भिजवा दूँ एक थैला अंजीर का!"

शीला दौड़कर उसके पास आई और बाँह पकड़कर बोली—"घर चलो घर!"

झटके से हाथ छुड़ाकर रमेश चीखने लगा—"नहीं, घर नहीं बनाऊँगा। छत गिर जायेगी! दीवार टूट जायेगी! मैं मर जाऊँगा! मैं घर नहीं बनाऊँगा!"

तमाशबीनों में स्कूल के कुछ बच्चे भी थे। रमेश ने लपक कर एक बच्चे के हाथ से किताबें छीन लीं। एक-एक किताब इधर-उधर फेंकने लगा। दूसरे सभी बच्चे डरकर पीछे हट गये। जब एक किताब हाथ में रह गई तो वह किताब के पन्ने पलटने लगा। फिर उस लड़के से पूछा—"अरे क्या पढ़ता है! एक और एक तीन होते हैं न? नहीं होते? इसमें ऐसा नहीं लिखा है! तो फाड़ दे इसे!"

और सचमुच ही रमेश उस किताब के पन्ने फाड़ने लगा। किताब वाला लड़का अपनी किताब की दुर्दशा देखकर रो पड़ा। उसने सड़क के किनारे पड़ा हुआ एक पत्थर उठा लिया और गन्दी गाली देते हुए तानकर दे मारा। पत्थर रमेश के सिर में जा लगा। दूसरे बच्चों के हौंसले भी बढ़े। उन्होंने भी पत्थर, कंकर जो कुछ आया, हो-हल्ला करते हुए रमेश की तरफ फेंकना शुरू किया। लेकिन शीला ने रमेश को अपनी बाहों में भर लिया। तमाशबीनों में खड़े कुछ लोगों ने बच्चों को डाँटकर भगा दिया।

रमेश के सिर से खून बह निकला। मस्तक और नाक से होता हुआ खून उसके होठों पर टपकने लगा। हाथ में खून लेकर रमेश चिल्लाया—"खून! पकड़ो खूनी को! फांसी पर चढ़ा दो!"

शीला ने उसे जबरदस्ती पकड़कर खींच लिया और अपना आँचल फाड़कर सिर पर पट्टी बाँधने लगी। मगर रमेश ने फिर उसका हाथ झटक दिया। अपना खून भरा हाथ दिखाकर कहने लगा—"किसी को चाहिये मेरा खून?"

एक भला आदमी शीला के पास आकर बोला—"क्यों बहिन, बाबू का यह हाल कैसे हो गया?"

"क्या बताऊँ भैया, बड़ी लम्बी कहानी है। जरा मेरी मदद करो इन्हें घर तक ले जाने में।"

वह भला आदमी रमेश को सहारा देकर ले चला। पर रमेश फिर बकने

लगा—"किसी को नहीं चाहिये मेरा खून ! मैं वेईमान हूँ न ! वेईमान का खून भला कौन लेगा !"

उस आदमी ने शीला से पूछा—"किधर चलना है वहिन !"

"सामने वाली गली में ।"

फिर उसने अपने कपड़ों की चिन्ता किये बिना खून से लथपथ रमेश को अपनी बाँह की मजबूत पकड़ में बाँधा और ले चला गली की तरफ । कुछ बच्चे शोर मचाने लगे, मगर दूसरे लोगों ने डाँट-डपट कर उन्हें भगा दिया । रोती-सिसकती शीला भी साथ-साथ चल पड़ी । जैसे-तैसे रमेश को घर तक लाया गया । शीला ने जल्दी से पट्टी गीली करके उसके सिर पर बाँधी । साथ में आये व्यक्ति ने शीला से पूछा—"यह हाल कव से है, बहिन ?"

"बस, कल से ही समझो ! माँ के मरने ने दीवाना बना दिया है ।"

फिर शीला ने रमेश के संघर्ष, आर्थिक अभाव, उसकी सिद्धान्तवादिता सभी कुछ के बारे में विस्तार से बताया । इतना सब सुनकर उस व्यक्ति ने कहा—"इसका रास्ता तो निकलना ही चाहिये । देखो बहिन, मेरा नाम शंकर दयाल है और मैं एक पत्रकार हूँ । मैं संसद-सदस्य मुकुट बिहारी भार्गव के सामने इस मसले को रक्खूंगा और कोशिश करूँगा कि देश के ऐसे ईमानदार नौजवानों को पागल होने से बचाया जाय । मैं पीछे आनन्द भवन में ही रहता हूँ, जब तब आता रहूँगा । वैसे मेरी जरूरत पड़े तो बुलवा लेना । मगर तुमने बताया नहीं कि तुम इनकी क्या लगती हो ?"

"कुछ नहीं लगती ! एक पागल से किसी का क्या लगाव हो सकता है !"

दोनों की नजरें दरवाजे की तरफ घूम गई । अपनी बात खत्म करके मास्टर जी आग्नेय नेत्रों से शीला को देखते हुए आगे बढ़े और उसका हाथ पकड़ कर बोले—"बहुत हुआ । अब घर चल सीधी तरह !"

पिताजी का हाथ झटक कर वह बोली—"मैं नहीं चलूँगी !"

"तो तू अपना और मेरा तमाशा दिखायेगी लोगों को ! अब तक दुनिया ने जो देखा वह क्या कम है ! वेशर्मो की तरह सड़क पर पागल के पीछे भागना, उसका हाथ पकड़ना ; ये क्या खानदानी और शरीफ लड़कियों के काम है !"

शीला भी सिहनी की तरह गरजती हुई बोली—"जीवन का साथ निभाने की बात जिसके लिये सोच ली गई, अब उसे अंधे कुंए में गिरते हुए देखकर मुंह मोड़ना, कहाँ की शराफत और खानदानी बात है!"

मास्टर जी कुछ कहते, इसके पहिले ही शंकर दयाल बीच में बोल पड़ा—"मास्टर जी, मैं कुछ बोलूं।"

एक ही मोहल्ले में रहने के कारण दोनों में अभिवादन तक का साधारण-सा परिचय था, लेकिन घरेलू परिचय से दोनों ही दूर थे।

मास्टर जी ने कहा—"शंकर बाबू, अब आप ही इसे कुछ समझाईये।"

"दरअसल समझने की जरूरत तो आपको है मास्टर जी! मुझे तो अब मालूम हुआ कि यह आपकी बेटी है। आपको तो गर्व करना चाहिये कि आप एक ऐसी बेटी के पिता हैं जो अपने आदर्श, अपने चरित्र और अपने सिद्धान्त के लिये हर बुरी परिस्थिति से गुजरने के लिए तैयार है।"

यह सुनकर मास्टर जी झुंझला उठे और बोले—"ओफ! आप भी आदर्श का गीत गाने लगे।"

"हमारी पूरी संस्कृति और सभ्यता आदर्श का एक बेमिसाल गीत ही तो है मास्टर जी। भारतीय धर्म, नीति, रीति संस्कृति में से अगर आदर्श निकाल दिया जाय तो फिर हमारी स्थिति मक्खन निकाले गये छाछ की तरह ही हो जायेगी। आदर्श ही तो भारतीय संस्कृति के प्राण हैं।"

"पर भाई मेरे, कोरे आदर्श से जिन्दगी तो आगे नहीं बढ़ती! जिन्दा रहने के लिये ढेरों दूसरी चीजों की जरूरत होती है। ये जरूरतें पूरी हो जाँय तो आदर्श की बातें भी अच्छी लगती हैं। आदर्श की कोरी बातें करने वालों को कोई टके भाव भी नही पूछता। देख लीजिये, मिसाल आपके सामने है। आदर्शो की रट लगाते-लगाते यह लड़का पागल हो गया है।"

शीला बीच में बोल पड़ी—"हाँ, यह लड़का बेईमान होना नहीं चाहता था, इसलिए पागल हो गया है।"

अचानक रमेश चीखता हुआ शीला की तरफ झपटा—"बेईमान! तू बेईमान! चोर! गद्दार! खा जायगी सारे मुल्क को! देश को! समाज को!

पर तुझे मिलेगा क्या ! ठींगा !"

रमेश ने अंगूठा दिखाते हुए शीला की नाक पकड़ ली। शीला ने प्यार से उसका हाथ हटा दिया।

"अब बताइये शंकर बाबू, इस पागल के साथ····"

शंकर दयाल ने उनकी बात काटकर कहा—"देखिये मास्टर जी, आप बाप-बेटी के बीच में बोलने का मुझे कुछ हक तो नहीं है, मगर मसला कुछ इस किस्म का है कि मेरी नैतिकता मुझे चुप रहने की इजाजत नहीं देती। आपने खुद ही अपनी बेटी के लिये रमेश को चुना। दुर्भाग्य से और जमाने के साथ कदम न मिलाने के कारण रमेश के दिमाग़ को अगर अब धक्का लग गया है तो आप इसे बीच मझधार में छोड़कर अच्छा काम नहीं कर रहे हैं। आपकी नेक बेटी इस रंग बदलती दुनियाँ में भी अपने नैतिकता और चरित्र पर कायम रहना चाहती है। इसका इरादा है कि वह रमेश की सेवा करे और उसे फिर से होश हवाश में लाये। अगर आप ज़ोर-जबरदस्ती करके अपनी बेटी को ले जाना चाहते हैं तो ले जाईये, मैं खुद रमेश की देख भाल करूँगा।"

मास्टर जी बढ़कर हाथ नचाते हुए बोले—"अजी कैसी बातें कर रहे हैं, आप ! ज़ोर-जबरदस्ती की इसमें क्या बात है। वह मेरी बेटी है, मैं उसका बाप हूँ। वह अभी नादान है, अपना भला-बुरा नहीं सोच सकती। पर बाप के नाते मेरा तो फर्ज है कि मैं उसके भले-बुरे की बात सोचूं। रही आदर्श की बातें सो मैं इन बातों में आने वाला नहीं हूँ।"

उधर से मुँह फिराकर वे शीला की तरफ मुड़कर बोले—"चल री शीला, घर चल ! देखती आँखों से मैं मक्खी नहीं निगल सकता।"

"मैं नहीं चलूंगी।" दृढ स्वर में शीला ने कहा।

"क्या !" आँख और स्वर में अग्नि भरकर मास्टर जी ने पूछा।

"हाँ। मैं हरगिज-हरगिज नहीं चलूंगी।"

"कैसी बेटी है तू ! जो बाप की नाक कटवाने पर उतारू है।"

"आप कैसे अध्यापक है जो अपनी बेटी को उसके आदर्श और नैतिकता से गिराना चाहते हैं।"

"तो तू अब बदजबानी पर उतर आई है।"

"मैंने तो सिर्फ आपकी बात का जवाब दिया है।"

"ठकी है, मैं समझ लेता हूँ कि मेरे कोई सन्तान ही नहीं हुई, हुई भी तो मर गई।"

इतना कहकर मास्टर जी पाँव पटकते हुए वहाँ से चले गये। शीला और शंकर दयाल तटस्थ भाव से उनका जाना देखते रहे। एक लम्बी साँस लेकर शंकर दयाल ने कहा—"शीला, ज्यादा अच्छा होगा कि तुम अपने घर जाओ, रमेश की देखभाल मैं करूँगा।" शीला ने प्रश्नात्मक दृष्टि से देखकर फिर रमेश की ओर देखा जो एक अखबार के टुकड़े-टुकड़े कर रहा था।

"मैं तुम्हे विश्वास दिलाता हूँ कि रमेश को अपना बेटा समझकर इसकी देखभाल करूँगा। इस ओर से तुम निश्चिन्त हो जाओ।"

शीला प्रणाम् करके रमेश की तरफ देखती हुई बाहर निकल गई।

२३

मास्टर जी कुर्सी पर बैठे दोनों हाथों से मुँह ढाँप कर फूट-फूट कर रो रहे थे। जैसे उनका सब कुछ खो गया हो, और अब जीवन में निराशा, दुःख व पीड़ा के सिवाय कुछ भी शेष नहीं रहा। शीला चुपचाप भीतर आई। रोते-रोते उन्होंने कहा—"शीला की माँ, अब मैं भी तेरे पास आ रहा हूँ, शीला मुझे छोड़कर चली गई है! कैसे जीऊँगा अब मैं!"

शीला ने उनका हाथ पकड़ा तो वे चौंक पड़े। मुँह ऊपर उठाकर देखा तो वे और ज़ोर से रो पड़े। वह भी रोने लगी। मास्टर जी ने अपना हाथ छुड़ा लिया।

"पिताजी!"

"मर गए तेरे पिताजी!" आँसू पोंछते हुए उन्होंने कहा।

"ऐसा क्यों कहते हैं आप ! अगर आप मुझ से इतने तंग आ चुके हैं तो मैं मर जाती हूँ, फिर तो सब झंझट खत्म हो जायेंगे।"

शीला की बात सुनकर मास्टर जी का रोना बन्द हो गया। वे कुर्सी से उठे और उसकी तरफ देखकर बोले—"तू मरना चाहती है ? क्यों ?"

"मैं आपके लिए दुःख का कारण जो बन गई हूँ।"

मास्टर जी की घिग्गी बँध गई। शीला को गले से लगाकर वे रोते हुए बोले—"मेरी बच्ची।"

इससे आगे वे कुछ बोल नहीं सके। शीला भी रो पड़ी। दोनों के आँसू थमे तो मास्टर जी ने शीला के आँसू पोंछते हुए कहा—"मेरे जीते जी तू कैसे मर जायेगी शीलू !"

फिर उसके सिर पर हाथ रखकर कहा—"आज अगर तेरी माँ जिन्दा होती तो तू ऐसी बातें न करती। तेरी माँ के न होने से तू भी दुःखी है और मैं भी। अब ऐसे में तू मरने-जीने की बातें करेगी, तो मैं कहाँ जाऊँगा !"

आँसुओं का एक हल्का-सा ज्वार फिर उनकी आँखों में उमड़ आया।

शीला प्रकृतिस्थ होकर संभल चुकी थी। वह बोली—"जो सन्तान अपने माता-पिता को दुःखी करे, उसके जीने का क्या अर्थ !"

मास्टर जी कुर्सी पर बैठ गये। शीला भीतर रसोई में चली गई। वे बैठे-बैठे अपने और शीला के बारे में सोचने लगे। उनके मस्तिष्क में बेटी के विद्रोह के कारणों को लेकर द्वन्द्व चलने लगा। उन्होंने खुद ही रमेश को शीला के लिए चुना था। जब यह चुनाव हुआ था उस समय रमेश से उसके सुनहरे भविष्य की आशा थी, जो शादी होने के साथ शीला से भी जुड़ा हुआ था, लेकिन रमेश की आदर्शवादिता मार्ग में बाधक सिद्ध हुई। शादी के बाद बीवी और घर को सम्भालने लायक आर्थिक स्थिति तक भी रमेश नही पहुँच सका तो उसके प्रति अलगाव की भावना ने जन्म लिया। अलगाव की इस भावना का जन्म मूल रूप से बेटी की शुभेच्छा का ही परिणाम था। बेटी का भविष्य भी अंधकारमय दिखाई दिया तो उसके हित में अलगाव ही अंतिम निर्णय था। लेकिन, बेटी भी उतनी ही आदर्शवादी निकली जितना रमेश था। अतः रमेश की दरिद्रता और पागलपन शीला के निर्णय को नहीं बदल सके।

अब अगर बेटी अलगाव से दुःखी होती है तो इसका अर्थ होता है कि अलगाव का निर्णय गलत है। जो कुछ करने के लिए सोचा गया, उसका हेतु बेटी का सुख था, यदि बेटी सुखी नहीं है तो सोची गई बात गलत है।

इस तरह के ख्यालों में डूबते उतरते मास्टर जी के चेहरे के भाव बदलने लगे। ऐसा लगता था कि मानो भावों के दो दल उनके मन से मुख तक विस्तृत मैदान में युद्धरत हैं। जिसमें से अब एक दल पराजित होकर भाग रहा है और दूसरा दल उसका पीछा कर रहा है।

शीला के बारे में सोचने के बाद अब वे रमेश के बारे में सोचने लगे। उन्होंने बचपन से उसे देखा है। बहुत ही नेक, शरीफ और सुशील लड़का था। पढ़ने में भी जहीन। ईमानदारी के एक असूल ने उसे पागल बना दिया। अपने आदर्श के लिये वह अपने दिमाग का संतुलन खो बैठा। तो क्या हुआ! लोग अपने आदर्श के लिये अपने प्राणों तक की बाजी लगा देते हैं। देश के लिए आजादी पाना एक आदर्श था, जिसके लिये असंख्य पवित्र प्राणों का समर्पण किया गया। क्या लोग पागल थे, जो आजादी के लिये प्राण देते थे! क्या राणा प्रताप गलती पर थे कि अपना और अपने बच्चों का सुख छोड़कर जंगलों में मारे-मारे फिरते थे? सिर्फ आजादी के लिये। दुनियाँ के बड़े-बड़े आदमियों ने अपने नेक असूलों के लिए तन-मन-धन का सौदा नासमझी में ही तो नहीं किया। आज कितने नौजवान हैं, इस देश में, रमेश जैसे जो ईमानदारी के आदर्श के लिये इतने कष्ट उठाकर, माँ की बलि चढ़ाकर, पागल होना पसन्द करेंगे। देश में समृद्धि, सुख समाजवाद और समानता लाने के लिये नारों, प्रचार-प्रसार, भाषणों और बातों की जरूरत नहीं है, बल्कि रमेश जैसे नौजवानों की जरूरत है जो किसी भी कीमत पर समझौता करने के लिए तैयार न हों। समाचार पत्रों में नित्य ही खबर आती है कि फँला पुलिस अधिकारी, मन्त्री, कर्मचारी को रिश्वत लेते हुए पकड़ा गया। संतरी से मंत्री तक सारा ढाँचा व सारी दीवार बेईमानी, रिश्वत, भ्रष्टाचार, अनीति व मक्कारी से लीपि-पुती पड़ी है। इन बेईमान लोगों की वजह से ही आज देश ऊपर नहीं आ रहा है। गरीबी हटाओ की इतनी बड़ी छतरी और समाजवाद का इतना बड़ा छप्पर भी भ्रष्टाचार की धूप को हटाने में

समर्थ नहीं है। रमेश भ्रष्टाचार के कारण ही तो नौकरी नहीं पा सका। नौकरी नहीं पा सका, इसलिए माँ का ईलाज नहीं करा सका, अपनी स्थिति नहीं सुधार सका। रमेश को पागल बनाने और उसकी माँ को मारने में भ्रष्टाचार का हाथ है। भ्रष्टाचार, जो कि नौकरशाही और लालफीताशाही के हाथों में विना लाईसेंस का प्राणान्तक हथियार है। भ्रष्टाचार सरकार की असमर्थता का वह कलंक व टीका है जो उसके मस्तक पर इस छोर से उस छोर तक फैला हुआ है। अगर सरकार ने शीघ्र ही भ्रष्टाचार दूर नहीं किया और रमेश जैसे नौजवान समाज से दूर होते गये तो अवश्य एक दिन आयेगा जब जनता जागेगी और फ्रांस की राजक्रांति की तरह इस देश में भी क्रांति होगी। तब जनता चुन-चुन कर भ्रष्टाचारियों को जला डालेगी। जो जला दिये गये हैं, उनके नाम पर थूकेगी, जिनके नाम पर थूका जा चुका है, उनके वंश को जला डालेगी। फिर रमेश जैसे लोग, ईमानदार लोग पागल नहीं होंगे! उन्हें पागल होने की जरूरत भी नहीं होगी, क्योंकि ईमानदारी की कद्र होगी, आदर्शवादी लोगों की जय-जय कार होगी। पर रमेश का क्या होगा······· रमेश तो पागल हो·······"

"पिताजी, चाय!"

चाय का कप लिये शीला सामने खड़ी थी। मास्टर जी जैसे सोते से जागे। चौंक कर उन्होंने शीला की तरफ देखा। वेटी का मासूम और मुरझाया हुआ चेहरा देखकर उनकी आत्मा चीत्कार कर उठी। उन्होंने चाय का कप लेकर पास की मेज़ पर रख दिया और खुद उठ खड़े हुए। फिर वाहर चलने की तैयारी करते हुए बोले—"शीलू, चल मेरे साथ।"

"कहाँ?"

"बस मेरे साथ चल।"

"पर कहाँ?"

"फिर वही बात!"

"आपकी चाय!"

"चाय को गोली मार! तू आ मेरे साथ।"

शीला हैरान होकर पिताजी की तरफ देखने लगी। कुछ समझ नहीं सकी

तो फिर पूछा—"आप कुछ कहिये तो !"

"मैं कुछ नहीं कहूँगा, तू जल्दी से मेरे साथ चल।"

शीला मास्टर जी के साथ चल पड़ी। कटे हुए पतंग की तरह मास्टर जी विना रुके हुए चलते चले जा रहे थे। अपनी चलने की आदत के खिलाफ शीला भी जल्दी-जल्दी उनके पीछे लगभग भागने लगी। शीला रास्ते के रुख से समझ गई की उसे रमेश के पास ले जाया जा रहा है।

जब दोनों रमेश के यहाँ पहुँचे तो शंकर दयाल उसके कुछ कपड़े बेग में डालकर अपने साथ ले जाने की कोशिश कर रहे थे। रमेश को साथ ले जाना सरल काम नहीं था, उसका पागलपन उसकी गति में अवरोधक था। मास्टर जी ने पहुँचते ही पहला सवाल किया—"आप रमेश को कहाँ ले जा रहे हैं ?"

"अपने घर।"

"क्यों ?"

"यहाँ इसकी देखभाल करने वाला कोई नहीं है, इसलिये।"

"आपका ख्याल गलत है। यहाँ इसकी देखभाल करने वाले हैं।

"कौन ?"

"मैं और मेरी बेटी शीलू !"

उनकी बात सुनकर शंकरदयाल को विश्वास नहीं हुआ। शीला ने भी अविश्वास, हर्ष और आश्चर्य से मिश्रित एक दृष्टि अपने पिता की ओर उठाई। इस पर मास्टर जी ने अपनी दायीं बाँह में शीला को भरकर कहा—"शंकर बाबू, इस दुनिया में शीलू के सिवाय मेरा है ही कौन। अगर मैं अपनी इकलौती बेटी को भी सुखी नहीं कर सकता तो मुझ से बढ़कर बदनसीब इंसान और कौन होगा ! रमेश और शीलू, इन दोनों की बात रखनी ही पड़ेगी। शीला की खातिर रमेश को अच्छा करना ही होगा। एक ईमानदार नौजवान ईमानदारी के खातिर पागल होकर सड़कों पर भटकने लगा, तो देखने वाले ईमानदार न बनने की कसमें खाने लगेंगे। सारी दुनिया बेईमान हो जायेगी। ऐसी दुनिया में भूला-भटका कोई शरीफ बच गया तो वह साँस कैसे ले सकेगा ! शंकर बाबू, बेईमानी के मुकाबिले में रमेश की हार नौजवानों की हार होगी, शराफत, इंसानियत और ईमानदारी की हार होगी, दुनियाँ के हर

ईमानदार, हर धर्म और हर देवता की हार होगी। नहीं, नहीं! ऐसा हरगिज़ नहीं होने देना है। रमेश अच्छा होगा और अपने साथ खुद उठेगा, दूसरों को भी उठायेगा।"

शीला की आँखों से अब आश्चर्य और अविश्वास के भाव जा चुके थे केवल हर्ष और खुशी के भाव ही वर्तमान थे। शंकरदयाल भी हँसते हुए बोले—"इन्कलाब जिन्दाबाद! कहते हैं सुबह का भूला शाम को घर आ जाये तो भूला नहीं कहलाता!"

"हाँ, शंकर बाबू, मैं शाम होने से पहिले ही घर आ गया हूँ। मैंने भी अब फैसला कर लिया है कि मैं अपनी बेटी का हाथ किसी कौवे के हाथ में न देकर हँस के ही हाथ में दूँगा। मेरी समझ और नज़र में रमेश से अच्छा और सुन्दर हँस और कोई है ही नहीं, जो सिर्फ मोती ही चुगता है—"पत्थर कंकर नहीं चुगता। रमेश ने इस सत्य को उजागर कर दिया है कि हँसा तो मोती चुगे या भूखों मर जाय। परिणाम कुछ भी हो अब मैं रमेश को अकेला नहीं छोड़ूँगा। ईश्वर ने चाहा तो यह जरूर ही अच्छा होगा।"

"जरूर होगा मास्टरजी, जब आपका आशीर्वाद और शीला की प्रार्थनाएँ इसके साथ हैं तो अच्छा न होने का सवाल ही नहीं उठता। मैं भी भार्गव साहब से मिलकर असलियत से उनको आगाह करता हूँ। अब आप रमेश को संभालिये।" अपनी बात खत्म करके शंकर दयाल विदा लेकर चले गये।

२४

शीला अपना कुछ जरूरी सामान और कपड़े लेने घर पर गई। अभी वह कपड़े समेट ही रही थी कि घर के बाहर एक कार आकर रुकी। कार में से एक सम्भ्रान्त व्यक्ति अपनी पत्नी, युवा पुत्र और विवाहिता पुत्री के साथ

कार से बाहर निकल कर मास्टर जी के दरवाजे की ओर जिज्ञासु दृष्टि से झाँकते हुए बढ़ने लगे।

शीला भी कार की आवाज़ सुनकर दरवाजे के पास आ गई थी। प्रश्नात्मक दृष्टि से वह इन लोगों को देख रही थी। उस व्यक्ति ने सुलभ मुस्कान के साथ शीला से पूछा—"मास्टर जी हैं घर में ?"

"जी नहीं।" सुरीले स्वर और संकोच में शीला ने उत्तर दिया। उनकी पत्नी आगे बढ़ते हुए और स्नेह बरसाते हुए बोली—"तुम उनकी बेटी शीला हो न ?"

"जी हाँ।"

"तो बस फिर हमें उनसे नहीं तुम से काम है। आ जायें न भीतर ?"

"जी हाँ जरूर आईये।"

शीला एक साथ चार आगन्तुकों के अप्रत्याशित रूप से आ पहुँचने पर सकुचा गई। इस स्थिति के लिये वह बिल्कुल भी तैयार नहीं थी। वे चारों कमरे में चले आये। क्या करे क्या न करे की स्थिति में शीला को परेशान देखकर उस व्यक्ति ने कहा—"देखो बेटी, तुम परेशान मत होओ। मैं कृष्ण गोपाल हूँ, मेरे साथ मेरी श्रीमती, मेरी बेटी और मेरा लड़का है। हमें दरअसल मास्टर जी ने शाम के वक्त बुलाया था, मगर हम जल्दी ही आ गये।"

शीला उन लोगों को कमरे में सजी कुर्सियों पर बैठा चुकी थी। पत्नी बैठते हुए कहने लगी—"भई सच्ची बात यह है कि हम लोग एकाएक ही आना चाहते थे ताकि हर चीज़ अपने स्वाभाविक रूप में देख सकें।"

अब शीला की समझ में धीरे-धीरे सब बातें आने लगीं। बहुत दिनों से मास्टर जी कृष्ण गोपाल के लड़के से शीला के रिश्ते की बात पक्की करने की कोशिश कर रहे थे। कृष्ण गोपाल कपड़े के बहुत बड़े व्यापारी हैं। उनके एक रिश्तेदार के यहाँ मास्टर जी ट्यूशन पढ़ाने जाया करते थे। वहीं पर कृष्णगोपाल से परिचय हुआ। इनकमटैक्स के एक मामले में कृष्णगोपाल रंगे हाथों लाखों का घोटाला करते हुए पकड़ लिये गये थे। जिस इनकमटैक्स ऑफीसर के पास इनका मामला था, वह मास्टर जी का विद्यार्थी रह चुका

ईमानदार, हर धर्म और हर देवता की हार होगी। नहीं, नहीं! ऐसा हरगिज़ नहीं होने देना है। रमेश अच्छा होगा और अपने साथ खुद उठेगा, दूसरों को भी उठायेगा।"

शीला की आँखों से अब आश्चर्य और अविश्वास के भाव जा चुके थे केवल हर्ष और खुशी के भाव ही वर्तमान थे। शंकरदयाल भी हँसते हुए बोले—"इन्कलाब जिन्दाबाद! कहते हैं सुबह का भूला शाम को घर आ जाये तो भूला नहीं कहलाता!"

"हाँ, शंकर बाबू, मैं शाम होने से पहिले ही घर आ गया हूँ। मैंने भी अब फैसला कर लिया है कि मैं अपनी बेटी का हाथ किसी कौवे के हाथ में न देकर हँस के ही हाथ में दूँगा। मेरी समझ और नज़र में रमेश से अच्छा और सुन्दर हँस और कोई है ही नहीं, जो सिर्फ मोती ही चुगता है—"पत्थर कंकर नहीं चुगता। रमेश ने इस सत्य को उजागर कर दिया है कि हँसा तो मोती चुगे या भूखों मर जाय। परिणाम कुछ भी हो अब मैं रमेश को अकेला नहीं छोड़ूँगा। ईश्वर ने चाहा तो यह ज़रूर ही अच्छा होगा।"

"ज़रूर होगा मास्टरजी, जब आपका आशीर्वाद और शीला की प्रार्थनाएँ इसके साथ हैं तो अच्छा न होने का सवाल ही नहीं उठता। मैं भी भार्गव साहब से मिलकर असलियत से उनको आगाह करता हूँ। अब आप रमेश को संभालिये।" अपनी बात खत्म करके शंकर दयाल विदा लेकर चले गये।

२४

शीला अपना कुछ जरूरी सामान और कपड़े लेने घर पर गई। अभी वह कपड़े समेट ही रही थी कि घर के बाहर एक कार आकर रूकी। कार में से एक सम्भ्रान्त व्यक्ति अपनी पत्नी, युवा पुत्र और विवाहिता पुत्री के साथ

कार से बाहर निकल कर मास्टर जी के दरवाजे की ओर जिज्ञासु दृष्टि से झाँकते हुए बढ़ने लगे।

शीला भी कार की आवाज़ सुनकर दरवाजे के पास आ गई थी। प्रश्नात्मक दृष्टि से वह इन लोगों को देख रही थी। उस व्यक्ति ने सुलभ मुस्कान के साथ शीला से पूछा—"मास्टर जी हैं घर में?"

"जी नहीं।" सुरीले स्वर और संकोच में शीला ने उत्तर दिया। उनकी पत्नी आगे बढ़ते हुए और स्नेह बरसाते हुए बोली—"तुम उनकी बेटी शीला हो न?"

"जी हाँ।"

"तो बस फिर हमें उनसे नहीं तुम से काम है। आ जायें न भीतर?"

"जी हाँ जरूर आईये।"

शीला एक साथ चार आगन्तुकों के अप्रत्याशित रूप से आ पहुँचने पर सकुचा गई। इस स्थिति के लिये वह बिल्कुल भी तैयार नहीं थी। वे चारों कमरे में चले आये। क्या करे क्या न करे की स्थिति में शीला को परेशान देखकर उस व्यक्ति ने कहा—"देखो बेटी, तुम परेशान मत होओ। मैं कृष्ण गोपाल हूँ, मेरे साथ मेरी श्रीमती, मेरी बेटी और मेरा लड़का है। हमें दरअसल मास्टर जी ने शाम के वक्त बुलाया था, मगर हम जल्दी ही आ गये।"

शीला उन लोगों को कमरे में सजी कुर्सियों पर बैठा चुकी थी। पत्नी बैठते हुए कहने लगी—"भई सच्ची बात यह है कि हम लोग एकाएक ही आना चाहते थे ताकि हर चीज अपने स्वाभाविक रूप में देख सकें।"

अब शीला की समझ में धीरे-धीरे सब बातें आने लगीं। बहुत दिनों से मास्टर जी कृष्ण गोपाल के लड़के से शीला के रिश्ते की बात पक्की करने की कोशिश कर रहे थे। कृष्ण गोपाल कपड़े के बहुत बड़े व्यापारी हैं। उनके एक रिश्तेदार के यहाँ मास्टर जी ट्यूशन पढ़ाने जाया करते थे। वहीं पर कृष्णगोपाल से परिचय हुआ। इनकमटैक्स के एक मामले में कृष्णगोपाल रंगे हाथों लाखों का घोटाला करते हुए पकड़ लिये गये थे। जिस इनकमटैक्स ऑफीसर के पास इनका मामला था, वह मास्टर जी का विद्यार्थी रह चुका

था। मास्टर जी ने चार दिन तक रात-दिन एक करके अपने विद्यार्थी के बताये गये तरीकों से नये बहीखाते बनाकर कृष्णगोपाल को डूबने से बचा लिया था। तब से वह मास्टर जी को बहुत मानता था। अपने रिश्तेदारों के मुँह से उसने सुन रक्खा था कि उनकी बेटी शीला सचमुच सुशीला और गुणवती है। कृष्णगोपाल की पत्नी को बड़े घर की मिजाजवाली बहू पसन्द न होकर गरीब घर की गरीब बहू पसन्द थी। पति से जिद् करके उसने लड़की को देखने का फैसला किया। पति ने समझाया कि अहसान के बदले पाँच-दस हज़ार रुपया नकद दिया जा सकता है, मगर पत्नी की जिद् के आगे पति की पेश नहीं आई।

इन सभी बातों से शीला बेखबर तो नहीं थी, मगर उसने यह भी नहीं सोचा था कि वे लोग एकाएक इस तरह आ पहुँचेंगे। वह सकुचाई सी खड़ी थी तो कृष्णगोपाल बोले—"खड़ी क्यों हो, बैठ जाओ।"

शीला पास रक्खे स्टूल पर बैठ गई।

"तुम तो पढ़ रही हो न ? पत्नी ने पूछा।

"जी हाँ !"

"शायद बी० ए० में !" कृष्णगोपाल बोले।

"जी हाँ।"

"बेचारी घबरा सी गई है कि कौन लोग एकाएक आ पहुँचे !" मुस्कराते हुए पत्नी ने कहा।

कृष्णगोपाल कहने लगे—"घबराओ मत, हम घर के ही आदमी हैं। तुमने पहली बार ही देखा है। हम समझे थे कि छुट्टी का दिन है, मास्टर जी घर में ही होंगे।"

"वे पास ही गये हुए हैं, मैं उन्हें बुला लाती हूँ।" कहते हुए शीला उठ खड़ी हुई।

"नहीं, हमें जल्दी नहीं, तुम बैठो। सच तो हम कह ही चुके हैं कि यहाँ हम तुम से ही मिलने आये हैं। मैं तो अकसर मास्टर जी से मिलता ही रहता हूँ। ये लोग तुमसे मिलना चाहते थे।"

अपने लड़के की ओर इशारा करके वे कहने लगे—"यह मेरा सब से छोटा लड़का नरेन्द्र है। एम० बी० बी० एस० कर रहा है।"

शीला ने हाथ जोड़कर नमस्कार किया। प्रत्युत्तर में नरेन्द्र ने भी हाथ जोड़ दिये।

"यह मेरी मझली लड़की मालती है, इसकी शादी फर्रुखाबाद में हुई है।"

शीला ने उसे भी नमस्कार किया।

और ये हमारी श्रीमती जी हैं। तुम्हारे जन्म से पहिले इनकी शादी मेरे साथ हो गई थी।"

सभी खिलखिला पड़े। शीला ने जब उन्हें नमस्कार किया तो वे अपनी कुर्सी से उठ कर उसके पास आकर बोली—"नहीं, मैं सिर्फ नमस्ते से खुश होने वाली नहीं हूँ। पाँव छूने पड़ेंगे।"

शीलाब अजी कशमकश में उलझ गई। वर्तमान स्थिति का समुचित ढंग से सामना करने के लिये वह उनके पाँव छूने, झुक गई। मगर बाहों में उठाते हुए कृष्णगोपाल की पत्नी ने कहा—"ऊँ····· हूँ·····मैं अभी की बात नहीं कर रही, हमेशा की बात कर रही हूँ।"

फिर अपनी बेटी कला की ओर देखकर वे बोली—"क्यों री कला, कैसी रही मेरी पसन्द !"

कला बोल उठी—"बहुत बढ़िया, मुझे तो भाभी बहुत पसन्द है।"

शीला चौंक पड़ी। उसकी भौंहों में बल पड़ गये। रूखे स्वर में उसने पूछा—"कौन भाभी ! किसकी भाभी !"

कला ने सहज भाव से कहा—"तुम भाभी, मेरी भाभी !"

"आपको ऐसे नहीं बोलना चाहिये।"

सभी एक-दूसरे का मुंह देखने लगे। स्वीच ऑफ होते ही जैसे सब चीजें एक साथ अन्धकार में डूब जाती हैं, उसी तरह शीला की इस बात से सभी के चेहरे फक हो गये। कृष्णगोपाल ने बात को संभालते हुए कहा—"शायद तुम्हें मालूम नहीं कि हम लोग तुम्हारे रिश्ते के सिलसिले में, तुम्हें देखने और मिलने ही यहाँ आये हैं।"

"मालूम तो मुझे बहुत कुछ है मगर········ !"

शीला अटक गई।

"मगर क्या ?" पत्नी ने जरा रूखे ढंग से पूछा।

"मैं पिताजी को बुला लाती हूँ, आप लोग उनसे ही बात कर लें।"

"इसकी कोई जरूरत नहीं।" कुर्सी से उठते हुए वे बोलीं।

"तनिक भाभी कह देने से तुमने लड़की का मुँह तो तोड़ दिया। छोटे-बड़े का कुछ भी लिहाज नहीं किया।"

शीला ने देखा कि कृष्णगोपाल की पत्नी तमतमा उठी है। उसकी बेटी ने भाभी कहने की जो अनाधिकार चेष्टा की थी, समय से पहिले जो असंगत सम्बोधन कह डाला था, उसके पक्ष में वह उसके घर में उसे ही अनुचित ढंग से दबा रही है तो वह भी बदलिहाज होकर बोल पड़ी—"पहली मुलाकात में, बात के किसी नतीजे पर पहुँचे बिना किसी कुंवारी लड़की को भाभी कहना क्या अच्छी बात है।"

"ठीक है! ठीक है!! क्या अच्छा है और क्या बुरा हमें तुमसे नहीं सीखना है। हमें क्या मालूम था कि ऊपर से इतनी सुशील होते हुए तुम भीतर से इतनी तेज होगी। कहीं सुना था तुम्हारे बारे में तो देखने चले आये। गलती हमारी ही हुई जो छोटे लोगों को मुंह लगाने की भूल कर बैठे!" फिर अपने पति और लड़के लड़की की ओर देखकर बोली—"आइये, चलेंगे।"

"ठहरिये!" शीला का चेतावनी भरा स्वर फूट पड़ा। सभी कुर्सी से उठ चुके थे।

"छोटे बड़े की बात कहकर आपने मुझे मुंह खोलने का मौका दिया है। आपको यह गलत खबर किसने दी है कि आप बड़े हैं और हम छोटे। क्या बड़प्पन है आप में और कहाँ से हम छोटे हैं ? दौलत होने से ही क्या बड़प्पन होता है ? दौलत के बल पर आपने इनकमटैक्स का लाखों रुपया बचाया। दौलत के जोर पर आपने अपने लड़के को जो बी० एस० सी० में थर्ड क्लास लाया, मैडिकल कॉलेज में एडमीशन दिलवाया, दौलत की ताकत से आप लोग न्याय, नीति, सच्चाई और शराफत का सौदा करते हैं और फिर भी आप लोगों को बड़े होने की गलतफहमी है। हम लोग ईमान-धर्म और शराफत के

लिये दौलत को ठोकर मार देते हैं तो आप लोगों की नजर में छोटे हो गये। छोटे बड़े को तोलने के लिये आपके पास अपनी खुद की बनाई हुई एक ही तो तराजू है—दौलत की तराजू! मगर यह तराजू असली नहीं, खोटी है, नकली है। इंसान को तोलने वाली असली तराजू है—इंसानियत! और इस तराजू पर हम लोग हमेशा ही पूरे वजन के साथ खरे उतरते हैं।"

"बाप रे बाप! कितनी लम्बी जबान है इस लड़की की!" आँखें फैलाकर और हाथ नचाकर कृष्णगोपाल की पत्नी ने कहा।

"शायद आपको अपने बेटे के लिये छोटी जबान वाली बहू चाहिये, जो सरकार को धोखा देकर इन्कमटैक्स से बचाये गये पैसों से हीरे जवाहरात के जेवर और बनारसी साड़ियाँ पहनकर, मुंह पर ताला लगाये आपके काले धन को चुपचाप पचाती हुई आपकी नकली खुशी और मुस्कराहटों में डूब सके। आपने मेरे बारे में ऐसी कल्पना करके गलती ही नहीं, जबरदस्त गलती की है।"

"अच्छा, अब बहुत हुआ!" कहते हुए कृष्णगोपाल दरवाज़े की तरफ बढ़ गये।

उनके पीछे-पीछे उसकी पत्नी और पुत्री व पुत्र भी चल पड़े। चलते-चलते पत्नी ने कहा—"हे भगवान। कहाँ आ फँसे।"

पीछे-पीछे शीला भी बोल पड़ी—"शुक्र तो भगवान का यह है कि मैं फाँसी से बच गई।"

कृष्णगोपाल दरवाज़े से बाहर आये तो सामने ही मास्टर जी मिल गये। उन्हें देखकर पत्नी बोली—"वाह मास्टर जी वाह! खूब खातिर की हमारी!"

मास्टर जी भी उन्हें देखकर चौंकते हुए बोले—"अरे! कब आये आप लोग। जा क्यों रहे हैं?"

"अब हमारा जाना ही बेहतर है!" कहते हुए कृष्णगोपाल कार की तरफ बढ़ गये।

उनकी पत्नी बोली—"आपने जलील करने के लिये हमें यहाँ बुलाया था!"

"मगर हुआ क्या।"

"क्या कुछ नहीं हो गया !"

"पर कुछ कहिये तो !"

"कहने का अब फायदा ही क्या है !"

मुँह विदका कर वह भी कार की तरफ वढ़ गई। कार स्टार्ट हो चुकी थी। सभी तेजी से चलकर उसमें जा बैठे। मास्टर जी कार की तरफ वढ़े ताकि कृष्णगोपाल से कुछ पूछ सकें, मगर पास पहुँचते-पहुँचते कार चल पड़ी। किसी ने उनसे वात करने की ज़रूरत ही नहीं समझी। वे भी कन्धे झाड़ते हुए लौट आये। दरवाज़े पर खड़ी शीला से उन्होंने पूछा तो शुरू से आखिर तक उसने कह डाला। भीतर आते हुए उन्होंने कहा—"चलो ठीक है ! इन्कार तो मुझे भी करना ही था। वात तो मैं कर चुका था, मगर कौन जानता था कि संयोग कुछ और ही होगा। तू देर तक नहीं लौटी तो मैं देखने चला आया।"

शीला ने चिन्तित स्वर में पूछा—"पर पिताजी आप यहाँ चले आये और वहाँ ..."

"नहीं, रमेश अकेला नहीं है, शंकर दयाल आ गये थे। उन्हीं को छोड़कर आया हूँ। चल, तूने अपनी चीजें ले ली हैं न ?"

"हाँ।"

"तो तू अब वहाँ चल, मैं जरा डाक्टर के पास हो कर आता हूँ।"

"कौन से डाक्टर के पास जा रहे हैं आप ?"

"डाक्टर कपूर के पास ! क्यों, ठीक जगह पर ही जा रहा हूँ न ?"

शीला ने शरमाकर गर्दन झुका ली।

"पगली कहीं की ! तू अपने वाप को वुद्धू समझती है क्या ? चल रमेश के पास, मैं अभी आता हूँ, थोड़ी देर से।"

शीला अपना वेग उठाकर चल दी।

मास्टर जी ने स्कूल से दो सप्ताह की छुट्टी ले ली और शंकर दयाल के साथ रमेश का ईलाज कराने के लिये भाग-दौड़ करने लगे। डॉ० कपूर ने रमेश को विशेषज्ञ और दिमागी मामले के विख्यात डॉ० काटजू के पास भिजवाया। डॉ० काटजू ने जाँच करने के बाद बताया कि दिमाग पर जरूरत से ज्यादा स्टेन और भार पड़ने से खुश्की बढ़ गई है, अतः रमेश को अधिक-से-अधिक खुले और शान्त वातावरण में रक्खा जाना चाहिये। चहल-पहल से दूर अगर एकान्त में उसे रक्खा जाय तो मानसिक विकार से जल्दी ही छुटकारा मिल सकता है। वैसे मूलरूप से यह स्थिति पागलपन की नहीं, उन्माद की है। उत्तेजना, घुटन, कुंठा और असन्तोष के कारण ही उन्माद की यह स्थिति पैदा हुई है।

इसके अलावा कुछ दवाईयाँ भी उन्होंने लिख दीं। ईलाज का सारा खर्च मास्टर जी ने ही उठाया। शंकरदयाल ने शहर से दूर अपने गाँव हरिपुर में रमेश के रहने की व्यवस्था भी कर दी। एक घंटे का रास्ता था, अतः रोज ही आना-जाना भी सम्भव था।

मास्टर जी अपने साथ रमेश और शीला को लेकर हरिपुर पहुँच गये। हरिपुर में शंकरदयाल का अपना खुद का ही मकान था, जो वर्षों से खाली पड़ा था। बचपन में ही वह शहर आ गया था और वहीं रहने लगा था। यूँ तो हरिपुर छोटा-सा ही गाँव था, मगर प्राकृतिक दृष्टि से बहुत ही सुन्दर था। एक ओर पहाड़ी शृंखला दूर तक निकल गई थी तो दूसरी ओर कल-कल करती हुई सोन नदी बहती थी। हरियाली से भरेपूरे खेत खलिहान, गायें भैंसो की धमाचौकड़ी, बछड़ों का रम्भाना, पक्षियों के गीत और इन सब के ऊपर गाँववालों के सादा जीवन ने हरिपुर को एक सुन्दर, शर्मीली और आकर्षक दुल्हन का रूप दे रक्खा था।

शंकर दयाल का घर गाँव के पश्चिमी छोर पर पहाड़ी के सामने ही था, जहाँ उन्मुक्त पवन झकोरे लेता। घर यद्यपि कच्चा ही था, मगर आकर्षक व सलीके से बनाया गया था। बाहर बाड़ा है, कुछ हट कर एक कुँआ और

सामने ही शिवालय था। मास्टर जी और शीला को तो यह जगह बहुत ही पसन्द आई। शीला ने तो कह भी दिया—"पिताजी, अब शहर जाकर क्या करेंगे! यहीं रहा करेंगे।"

मास्टर जी ने विनोद किया—"तो शहर से अपना स्कूल यहाँ ले आऊँ।"

"स्कूल तो यहाँ भी होगा।"

"हाँ है, पर मुझे यहाँ अब इस बुढ़ापे में कौन नौकरी देगा। खैर! फिलहाल जिस काम से आये हैं, वह तो कर लें।"

शीला जी-जान से रमेश की सेवा में लग गई। रोज सुबह उठकर उसके लिये दूध गरम करती, उसे पिलाती, फिर खेतों से होती हुई नदी की तरफ घुमाने ले जाती। मास्टर जी भी साथ चलते। वापिस आकर उसके सिर में मालिश करती, हाथों और पाँवों के तलुए सहलाती। मास्टर जी नहलाने में रमेश की मदद करते। इसके बाद शीला रामायण का पाठ करती, रामधुन गाती, अपने साथ रमेश को गवाने की भी कोशिश करती। शुरू-शुरू में रमेश नहीं गा सका, मगर धीरे-धीरे स्थिति सुधरने लगी और वह भी तन्मय होकर स्वर मिलाने लगा। इतना सब करने के बाद शीला कुछ नाश्ता तैयार करती। रमेश और मास्टर जी को नाश्ता कराने के बाद खुद भी कुछ खा पी लेती। फिर घर के छोटे-मोटे काम निपटाने में जुट जाती तब तक रमेश, मास्टर जी की लाई हुई पत्रिकाओं के पन्ने उलटता रहता। खाना बनाकर वह प्रायः रमेश को लेकर सामने के शिवालय में चली जाती, जहाँ ऊपर चबूतरे पर बैठकर शहर से आने वाली सड़क की चहल-पहल को देखते रहते। मास्टर जी अक्सर नाश्ता करके बस से शहर चले जाते।

पूरी धूप चढ़ते तक मास्टर जी भी लौट आते और तीनों एक साथ बैठकर खाना खाते। खाना खाकर तीनों ही सो जाते। धूप ढलने तक जब उठते तो प्रायः शंकरदयाल की मुँह बोली बुढ़िया मौसी रामी इनके लिए कभी गन्ने का रस, कभी ताजा गुड़ तो कभी भुने हुए चने भुरभुरे या मूँगफली ले आया करती। मौसी के साथ बैठकर तीनों ही बड़े आनन्द से उसकी प्यार भरी चीज़ों को खाते और गाँव के सुख का बखान करते। उसके बाद

शीला अखबार पढ़कर सुनाती। अखबार पढ़ते वक्त वह केवल खेलकूद या मनोरंजन की ही बातें सुनाती। इसके लिए डाक्टर काटजू की ओर से सचेत कर दिया गया था।

मौसी रोज सुबह जब दूध लेकर आती तो कुछ-न-कुछ साग-सब्जी साथ ले आया करती। शीला जानती थी कि रमेश को आलू-मेथी बहुत पसन्द है। वह मौसी से मेथी ही मँगवाया करती। शाम को साग-सब्जी साफ करते और बनाते-बनाते अंधेरा उतर आता, तो तीनों आरती के वक्त पर शिवालय में पहुँच जाते। रात को मौसी शीला के कमरे में ही सोती थी। खाना बनाने के लिए ये दोनों तो घर आ जातीं और मास्टरजी रमेश को लेकर घूमते-घुमाते गाँव के वाचनालय की ओर ले जाते। वाचनालय में रेडियो भी था और उस पर फिल्मी व गैरफिल्मी गीतों का रस लेने के लिए गाँव की नवयुवक-मंडली वहाँ इकट्ठी रहती थी। गाँव के सभी लोग मास्टरजी और रमेश का समुचित आदर करते, मौसी ने सभी को बता दिया था कि ये दोनों शंकरदयाल के रिश्तेदार हैं।

दोनों जल्दी ही घर लौट आते। खाना खाने के बाद मौसी छोटे-मोटे काम निपटाने में लग जाती और मास्टर जी रमेश को कुछ चुटकले, हास्य व लतीफे सुनाते रहते। मौसी भी काम पूरा करके गाँव से संबन्धित चुटकले और राजा रानी के किस्से सुना दिया करती।

इसी तरह दिन बीतने लगे और रमेश धीरे-धीरे प्रकृतिस्थ होने लगा। मास्टर जी ने दो सप्ताह की छुट्टी और ले ली थी, मगर अन्तिम दिनों में वे प्रायः एक दो दिन के लिए शहर में भी ठहरने लगे थे। शंकर दयाल भी कई बार आकर रमेश को देख गये थे। एक दिन रमेश और शीला घूमते-घूमते नदी के किनारे पहुँचे। इधर-उधर की बातों के बाद रमेश ने पूछा—"आखिर कब तक मुझे गांव में रक्खा जायेगा, आखिर मुझे शहर भी जाना है, कुछ काम-धन्धा भी देखना है।"

"फिर वही बात! पिताजी ने तुमसे एक बार कहा तो है कि डॉक्टर की मर्जी के बिना तुम्हे यहाँ से नहीं ले जाया जा सकता।"

शीला ने प्यारभरी चिढ़ से कहा।

"अजीब मर्जी है डॉक्टरों की! आखिर हुआ क्या है मुझे!! मास्टर जी तो कह रहे थे कि मामूली से चक्कर आते थे। तुमने बताया कि मैं एक दिन चक्कर खाकर गिर गया। इन जरा-सी बातों के लिए तुम मुझे यहाँ ले आये, डाक्टरों ने भी पाबन्दी लगा दी! अजीब तमाशा है!"

शीला इस बार प्यार से कम और प्यार भरे गुस्से से चिढ़कर कहने लगी—"मैंने तुम्हें उस दिन समझाया था कि इस बारे में बात मत करना, पर तुमने फिर वही चर्चा चला दी। ताई के मरने का दुःख तुम्हें एकाएक सहन नहीं हुआ था। तुम घबरा गये थे। तुम्हें चक्कर आया, फिर गिर पड़े, सिर में चोट आ गई तो यहाँ ले आये। डॉक्टरों की राय थी कि इन्हें शान्त वातावरण में रक्खा जाय।"

"मगर कब तक?" रमेश भी झुँझलाकर बोला।

"डॉक्टरों के मामले में तुम दखल कैसे दे सकते हो। जब तक डॉक्टर काटजू चाहेंगे तुम्हें यहाँ रहना पड़ेगा।"

"अच्छी मुसीबत है!"

"हाँ, कभी-कभी कोई-कोई मुसीबत अच्छी भी होती है।" मुस्करा कर शीला ने कहा।

मेरी मुसीबत तुम्हें अच्छी लग रही है?" कृत्रिम रोष से रमेश ने पूछा।

"हां, तुम्हारी यह मुसीबत तुम्हारे और मेरे दोनों के लिये ही अच्छी साबित हुई है।"

"कैसे?"

"एकदम बुद्धू हो तुम! सीधी-सी बात भी नहीं समझते। तुम पर मुसीबत न आती तो पिताजी तुम्हारे पास कैसे आते, पिताजी न आते तो हम तुम दोनों यहाँ कैसे आते! समझे कुछ!"

अब ये लोग नदी का किनारा छोड़कर गाँव की तरफ जाने वाली पगडंडी पर बढ़ने लगे।

रमेश ने हाथ हवा में नचाते हुए कहा—"यह मास्टर जी का बड़प्पन है

कि उन्होंने मुझे सहारा दिया। अब मेरी तबियत ठीक हो रही है। शहर जाकर तुम अपने रास्ते और मैंने अपने रास्ते।"

"इसीलिये मैं तुम्हें बुद्धू कहती हूँ।"

रमेश की नकल उतारते हुए मुँह बनाते हुए वह बोली—"तुम अपने रास्ते और मैं अपने रास्ते ! क्या कहने हैं तुम्हारे और तुम्हारे रास्ते के।"

"तुम तो बोलने भी नहीं देती।

"कुछ अच्छी बात बोलते हो तो बोलो ! बकरा जान से गया और खाने वाले को स्वाद ही नहीं आया। मैं तो मर गई रास्ता एक करते-करते और तुम रास्ते को अलग-अलग करने पर तुले हुए हो।"

"पर तुम्हारे वश में है ही क्या !"

"अच्छा महाराज, अब आप चुप करो और घर चलो।"

शीला सचमुच ही चीढ़ गई और मुँह फुलाकर चुपचाप चलने लगी। रमेश भी चुपचाप चलता रहा। कुछ दूर और देर तक दोनों खामोश रहे, मगर फिर रमेश से नहीं रहा गया। उसने शीला के मुँह की तरफ देखा। पर वह जानकर भी अनजान बनी रही।

"नाराज हो गई मुझ से !"

शीला ने जवाब नहीं दिया।

"बोलोगी नहीं ?"

शीला चुप।

"बिल्कुल नहीं बोलोगी ?"

इस बार उसकी हँसी नहीं रुकी। वह खिलखिलाकर हँस पड़ी। हँसी पर काबू पाया तो बोली—"तुमसे नाराज भी तो नहीं हुआ जा सकता।"

"अभी-अभी जो कुछ तुम हुई थी, वह क्या नाराज नहीं थी ?"

"हाँ हुई थी, पर क्या एक मिनट तक भी तुमने मुझे नाराज होने दिया ?"

"वैसे तुम्हारा इरादा कितने देर तक नाराज रहने का था ?"

"तुम्हारे सामने मेरे इरादे पर मेरा वश चलता तो हम अब तक चुप ही रहते।"

"बड़ी अच्छी-अच्छी बातें करने लगी हो आजकल तुम ! अच्छा अब तो बताओ कि हम लोग शहर कब चलेंगे ?"

शीला झुँझला उठी और चिढ़कर कहने लगी—"घूम फिर कर तुम वापिस वहीं आ गये ! तुम्हें यहाँ अच्छा नहीं लगता क्या ! इतनी खुली जगह ! इतने प्यारे लोग ! यह शान्ति ! मेरा तो दिल ही नहीं करता कि फिर लौटकर कभी यहाँ से जाऊँ। एक तुम हो जो जाने की रट लगाये हुए हो !"

लम्बी साँस छोड़ते हुए रमेश ने कहा—"सच तो यह है शीलू कि यह जगह और तुम्हारा साथ छोड़कर जाना मैं भी नहीं चाहता, मगर कुछ और जिम्मेदारियाँ भी तो हैं ।"

शीला ने चेतावनी देते हुए कहा—"मेरे सामने तो जिम्मेदारी की बात कही सो कही, पर पिताजी के सामने ऐसी बातें करोगे तो वे गुस्सा करेंगे। डॉ० काटजू ने कहा है कि इस बीमार को शहर और जिम्मेदारी इन दो चीजों से दूर रक्खा जाना चाहिये।"

"सच !"

"क्यों ! तुम्हें खुशी हुई यह सुनकर ?"

"इन चीजों से दूर रहकर अगर तुम्हारे साथ रहने का मौका मिलता है, तो क्या खुशी नहीं होगी ?"

"बातें बहुत बनाने लगे हो ।"

"बातें बनाते हुए तुम पकड़ने भी तो बहुत लगी हो।"

घर आ चुका था। दोनों घर के भीतर चले गये।

२६

शंकरदयाल एक बहुत ही जागरूक और ईमानदार पत्रकार था। फिर रमेश जैसा चरित्र उन्हें मिल जाय तो वह अखबार की सुर्खियों से तहलका

मचा देने वाला व्यक्ति भी था, मगर उसने ऐसा कुछ नहीं किया। वह सीधा संसद सदस्य भार्गव के पास जा पहुँचा और रमेश के बारे में शुरू से आखिर तक किस्सा कह सुनाया।

कच्चे मंत्री और नकली नेता तो पत्रकार को यमदूत का दूसरा रूप ही मानते हैं। चुनाव से पहिले राम और सफल चुनाव के बाद रावण का भेष धरने वाले नेता, मंत्री और संसद सदस्य भी पत्रकार से ऐसे ही घबराते हैं, जैसे, भ्रष्टाचारी अफसर भ्रष्टाचार-विरोधी दल से घबराते हैं। मगर भार्गव के साथ ऐसा कुछ नहीं था। वह सज्जन, कर्मठ, सत्यनिष्ठ, देशभक्त और समाजसेवी प्राणी थे। चुनाव से पहिले और चुनाव के बाद उनके रूप और व्यवहार में कभी किसी ने कहीं भी अन्तर नहीं देखा।

जब शंकरदयाल ने रमेश का किस्सा ब्यान किया तो वे आग बबूला हो उठे। वे कहने लगे—"तो हमारे समाज में ऐसे नौजवानों को पागल होने के लिये छोड़ दिया जायेगा ?"

"मैं भी तो यही कहता हूँ भार्गव साहब। देश की इस नई पीढ़ी को बचाइये। विघटन नई पीढ़ी का नहीं, पुरानी पीढ़ी का हुआ है! रमेश जैसे कट्टर ईमानदार लोग अगर सरकारी कुर्सियों पर बैठा दिये जाँय तो भ्रष्टाचार टिक नहीं सकेगा।"

भार्गव साहब ने असमर्थता का भाव प्रकट करते हुए विवश स्वर में कहा—"नहीं शंकर बाबू, भ्रष्टाचार इतनी जल्दी खत्म होने वाला नहीं।"

"क्यों ?"

"क्योंकि हमारे देश की आम जनता भी उसे अपना चुकी है। उसके बिना अब वह गुजर ही नहीं कर सकती। भ्रष्टाचार का विरोध करने वाले के पड़ौस में रहने वाला आदमी अपने, अपने परिवार व बच्चों का पेट बिना भ्रष्टाचार किये भर ही नहीं सकता। इधर आजादी के बाद राष्ट्रीय-भावना और नागरिक-भावना का ऐसा सत्यानाश हुआ है कि इतिहास में भी ऐसी भयंकर दुर्घटना कभी नहीं घटी होगी।"

"तो फिर इसका हल क्या है ?"

"हल यही है कि जनता जागे। अब तक तो कुछ बुद्धिजीवियों ने ही भ्रष्टाचार का विरोध किया है। आम जनता तो फुरसत के वक्त अपने मन का गुबार निकाल लेती है—बातें करके! इससे तो होने जाने वाला कुछ है नहीं। व्यवहार में तो भ्रष्टाचार को सहन करके उसे बढ़ावा देती रहे और बातों में उसका विरोध करेगी तो भ्रष्टाचार की उम्र और बढ़ेगी। होना तो यह चाहिये कि एक कदम भी भ्रष्टाचार को सहन करने के लिये न उठ सके। सच तो यह है कि भ्रष्टाचार को रोकना अब सरकार, पुलिस या भ्रष्टाचार-विरोधी दल के वश की बात नहीं रही।"

"तो ?"

"आम जनता के सिवाय भ्रष्टाचार को और कोई खत्म नहीं कर सकता।"

"वह कैसे ?"

"जब-जब जहाँ-जहाँ भ्रष्टाचार की घटना हो तब-तब छोटे मोटे संगठन के साथ विरोध करे और उसके तुरन्त उन्मूलन का उपाय करे। जब तक वहाँ से भ्रष्टाचार खत्म न हो, तब तक डटी रहे। अपने निजी स्वार्थों को एक किनारे करके मोर्चाबन्दी कर ले।"

"मगर इससे तो सरकार के काम में बाधा पहुँचेगी।" शंकरदयाल ने शंका प्रकट की।

"बिलकुल नहीं, सरकार को उल्टे भ्रष्टाचार उन्मूलन में इससे सहायता मिलेगी।"

शंकरदयाल ने दबे स्वर में कहा—"गुस्ताख़ी माफ करें, सरकार खुद भी कहाँ चाहती है कि भ्रष्टाचार खत्म हो। सरकार इसे खत्म करना चाहे और यह खत्म न हो, ऐसा तो हो नहीं सकता। और अगर ऐसा है तो साफ मतलब यह हुआ कि भ्रष्टाचारियों की ताकत सरकार की ताकत से बढ़कर है। यह सच्चाई अगर कभी जनता तक पहुँच गई तो भ्रष्टाचार खत्म करने का काम वह खुद कर लेगी, मगर अपने तरीके से!"

भार्गव साहब ने असन्तोषभरी एक लम्बी साँस लेते हुए कहा—"पर

ऐसा होना नहीं चाहिये। खैर! फिलहाल आप रमेश के बारे में बताईये कि उसके लिये क्या किया जाय ?"

"रमेश की स्थिति में सुधार हो रहा है। गाँव में जाकर वह खुश भी है। अब यही सोचा गया है कि उसे हमेशा गाँव में ही रक्खा जाय। शहर की बेरोजगारी से तंग आकर ही वह पागल हो गया था। अब फिर से पागल बनाने के लिये उसे शहर में लाना तो ठीक नहीं होगा।"

भार्गव जी खिलखिला कर हँस पड़े और बोले—"शहर में क्या पागल ही बसते हैं ?"

"मेरा मतलब इन नौजवानों और पढ़े-लिखे लोगों से है जो नौकरी की तलाश में घूमते हैं और बाद में तंग आकर आत्महत्या कर लेते हैं या परेशान होकर पागल हो जाते हैं।"

भार्गव जी एकाएक ही गम्भीर हो गये। वृद्धावस्था की गुरु गम्भीरता उनके सौम्य चेहरे पर और अधिक गम्भीर हो गई। वे बोले—"सचमुच बड़ा गम्भीर विषय है। लोग गाँवों से भाग-भाग कर नौकरी करने शहरों में चले आते हैं। इधर शहरों के स्कूल और कॉलेज हर साल हजारों बेकारों की उत्पत्ति कर देते हैं। फिर बड़े शहरों में महिलायें भी नौकरियों पर बड़ी संख्या में हैं। इन सभी बातों ने मिलकर शहरों में बेरोजगार व बेकार लोगों की संख्या बढ़ा दी है। गाँवों के लगातार खाली होने से अन्न के उत्पादन में भी कमी आई है। अगर गाँवों के नौजवान गाँव में ही रहें, बल्कि शहरों से भी पढ़े लिखे लोग गाँवों में जाकर उत्पादन करें तो राष्ट्र की बहुत-सी समस्याएँ सुलझ सकती हैं।"

"जी हाँ! यह सोचकर मैंने रमेश को अब गाँव में ही रखने का फैसला किया है।"

"यह तो बहुत ही अच्छी बात है! उसकी तबियत सुधर गई और वह गाँव में रहेगा, फिर तो सभी बातें सुलझ गई।"

"जी नहीं, कुछ उलझनें भी हैं। रमेश पढ़ा-लिखा और बुद्धिजीवी है। गाँव में रहकर वह करेगा क्या ? खेती भी करेगा तो अपनी शिक्षित पद्धति से

ही करेगा। उसके तौर-तरीके भले ही शहरी न हों, मगर देहाती भी तो नहीं होंगे। मेरा ख्याल है कि गाँव में रखकर उसकी बुद्धि और मानसिक शक्ति का समुचित लाभ गाँव वालों को दिलवाना चाहिये।"

"तो आप क्या चाहते हैं ?"

"मैंने एक छोटी-सी योजना बनाई है, मगर आप सरकार से सिफ़ारिश करके उसे स्वीकृत करा दें तो यह मेरे, रमेश के और गाँव वालों के हक में बहुत ही लाभकारी बात होगी।"

"क्या योजना है आपकी ?"

"गाँव में एक विशेष शिक्षा-केन्द्र खोला जाय, जिसका उद्देश्य गाँव के लोगों में शिक्षा-भावना की उत्पत्ति करना होगा। इस केन्द्र द्वारा गाँव के लोगों में राष्ट्र व समाज के प्रति उत्तरदायित्व की भावना को जागृत करके उन्हें राष्ट्रीय विकास की दिशा में, गाँव में रहकर ही, रचनात्मक ढंग से सोचने व करने के लिए तैयार किया जायेगा। केन्द्र का मूल उद्देश्य यही होगा कि गाँव के लोगों को शहर में जाकर नौकरी करने की अपेक्षा गाँव में रहकर उत्पादन में जुटे रहने के लिये बोध कराया जायेगा। दूसरे शब्दों में यूँ भी कहा जा सकता है, कि केन्द्र का प्रयत्न यह रहेगा कि गाँव में इस प्रकार की गतिविधियों की सृष्टि करे जिससे गाँव वालों को शहर से अधिक आकर्षण गाँव में ही प्रतीत हो और वे गाँव छोड़कर शहर जाने की बात सोच भी न सकें। इस प्रकार गाँव खाली नहीं होंगे, शहरों में भीड़ भी नहीं होगी और उत्पादन के बढ़ने से खाद्य-सामग्री का बराबर व संतुलित विभाजन भी हो सकेगा।"

"योजना तो शंकरदयाल, बहुत ही सुन्दर है, मगर रमेश का इससे क्या लेना-देना है ?"

"शिक्षा-केन्द्र के लिए केन्द्र अधिकारी की भी तो आवश्यकता होगी।"

"अवश्य ही होगी, साथ में कुछ अन्य कर्मचारी भी चाहिये।"

"तो रमेश को वह स्थान क्यों न दे दिया जाय।"

भार्गव जी विचार में पड़ गये। होठों पर उंगली नचाते हुए वे कहने

लगे—"केन्द्र के लिये जगह, कर्मचारी, केन्द्र अधिकारी, बजट, स्वीकृति ; कई पड़ाव हैं। खैर ! आप विस्तार से अपनी योजना के बारे में लिखकर मुझे दीजिये, मैं प्रयत्न करता हूँ।"

शंकरदयाल ने तुरन्त ही अपने बेग से कागजों का एक पुलिन्दा निकाला और भार्गव जी की ओर बढ़ाते हुए कहा—"लीजिये, यह योजना लिखित रूप से प्रार्थना-पत्र में खुलासा कर दी गई है।"

कागज़ पकड़ते हुए भार्गव जी बोले—"आपकी तैयारियाँ तो बहुत ही जोरों से हैं। लगता है आप रमेश को केन्द्र का अधिकारी बना कर ही मानेंगे।"

"वह इसके योग्य भी है। ऐसा ईमानदार लड़का जो अपने आदर्श के लिये हर खतरा उठाने को तैयार हो जाय, मैंने अपने जीवन में नहीं देखा।"

"आप जैसे सुयोग्य व्यक्ति जब योग्य युवकों के लिये कुछ करना चाहेंगे तो बात अवश्य ही बनेगी। राष्ट्र व समाज के हित में काम करने वालों के लिये अवसर व क्षेत्र की कमी नहीं है।"

"आपसे क्या छिपा हुआ है, आपतो जानते हैं कि आज योग्य और काबिल आदमी भूखे मर रहे हैं। लपाडिये, चोर और मक्कार किस्म के आदमी आजकल गुलछर्रे उड़ा रहे हैं।"

भार्गव जी असहमत होकर कहने लगे—"पर भाई मेरे, ऐसे गुलछर्रे कितने दिन तक उड़ाये जा सकते हैं, और ऐसे लोग कब तक खैर मनायेंगे। बकरे की माँ कब तक अपने बकरे की खैर चाहेगी। एक दिन ऐसा भी तो आता है जब छुरी गर्दन पर होती है और सिर नीचा होता है।"

"ईश्वर करे वह दिन जल्दी आये। बस मेरी आपसे यही प्रार्थना है कि आप रमेश के लिये ही नहीं बल्कि रमेश के रूप में नई पीढ़ी व गाँव के पक्ष में यह योजना आगे बढ़ाइये। यदि एक गाँव में यह प्रयोग सफल रहा तो, सारे देश को इससे प्रोत्साहन मिलेगा और सभी स्थानों पर ऐसे केन्द्र खोले जा सकेंगे।"

शंकरदयाल कुर्सी से उठ चुके थे। भार्गव जी ने आश्वासन देते हुए

कहा—"पिछले कई वर्षों में आश्वासन शब्द की और इसके अर्थ की बहुत ही निर्मम हत्या हुई है, इसलिये मैं इस मरे हुए शब्द को तो काम में नही लूँगा, मगर इतना अवश्य कहूँगा कि तुम्हारे मन को सन्तोष मिल सके इतना कुछ रमेश के लिए अवश्य ही हो जायेगा, वह इसका अधिकारी भी है।"

शंकरदयाल धन्यवाद की रस्म पूरी करके विदा लेकर चल दिया। मार्ग में वह मन-ही-मन रमेश, शीला और मास्टर जी के बारे में सोचने लगा। रमेश और शीला तो अपने स्थान पर ठीक ही थे, लेकिन मास्टर जी के मन-परिवर्तन से उसे बेहद खुशी हुई थी। परिवर्तन भी ऐसा कि सब कुछ न्यौछावर करने के लिए तैयार हो गये। एक सही नौजवान के उच्च आदर्श से प्रभावित होकर यदि एक अध्यापक अपना सब कुछ न्यौछावर करने के लिये तैयार हो जाता है तो इसी आदर्श के प्रति अन्य नौजवानों को आकर्षित करने के लिये कितने लोगों को एकत्रित किया जा सकता है। बड़ी संख्या में ऐसे लोग एकत्रित हो गये तो समाज का काया-कल्प ही हो जायेगा। ऐसा समाज जब सही दिशा की ओर बढ़ेगा तो साधारण लोगों का सामान्य जीवन सन्तोषप्रद होगा ही, फिर सभी सुखी होंगे। सर्वे भवन्तु सुखीन् की भावना उजागर होगी ही।

ऐसे ही सुखद विचारों से मन को गुदगुदाते हुए वह अपने घर की ओर बढ़ा चला जा रहा था।

२७

आज सुबह रमेश और शीला घूमते हुए मंडी की ओर निकल गये। मंडी से कुछ ही आगे बस-स्टॉप था, जहाँ हर घंटे के बाद शहर से बस आती रहती थी। बस की चहल-पहल के कारण वहाँ छोटी-छोटी दुकानें भी थी, जहाँ इक्के-दुक्के ग्राहक खड़े रहते थे। कुछ भिखारी भी सड़क के किनारे

अपना कटोरा खाली लिये बैठे थे।

यात्रियों से भरी हुई एक बस अभी-अभी पास के गाँव से आकर वहाँ ठहरी थी। यात्री लोग पान-बीड़ी लेने के लिये नीचे उतर आये थे। कुछ यात्री छोटे से एक होटल पर चाय पी रहे थे।

इन दोनों ने देखा कि एक बूढ़ा लंगड़ा भिखारी हाथ में अठन्नी लिये इधर-उधर देखता हुआ किसी को ढूंढ रहा है। रह-रह कर वह कह रहा है—"अरे दाता, यह क्या कर डाला! भगवान् के बन्दे ने गलती से आठ आने मुझे दे दिये हैं! कौन है सेठ! अपनी अठन्नी वापिस ले लो मेरे मालिक! मुझे यह धन नहीं पचेगा!"

वहाँ खड़े दूसरे लोग भी विस्मय से उसे देख रहे थे। रमेश और शीला भी कौतुकवश वहाँ खड़े हो गये। वह भिखारी रमेश के पास आकर बोला—बाबू, यह अठन्नी तुमने दी है क्या?"

"नहीं बाबा, मैंने तो कुछ नहीं दिया।

वह आगे बढ़कर बस के पास चला गया और बस के चारों तरफ घूम-घूम कर कहने लगा—"मेरे माई बाप, मेरे दाता किसी ने भूल से यह अठन्नी मुझे दे दी है, कौन है भगवान का नेक बन्दा, अपनी अठन्नी वापिस ले लो मालिक! मैं गरीब मर जाऊँगा।"

बस में बैठा एक यात्री खिड़की से झाँक कर बोला—"अरे बुड्ढ़, शोर क्यों मचा रहा है, रख ले इसे जेब में!"

"जेब में कैसे रख लूं माई-बाप, पराया धन है! गलती से आ गया है, मेरे पास!

"तो मचाता रह शोर!" कहकर उस यात्री ने मुँह अन्दर कर लिया।

एक दूसरा यात्री खिड़की से बोल पड़ा—"अरे बाबा, किसी सेठ ने खुश होकर आठ आने ही दिये होंगे। जब दिये हैं तो रख ले।"

"आठ आने कौन देता है, गरीब भिखारी को! गलती से अठन्नी आ गई है। मैं यह ...."

भिखारी आगे कुछ बोलता, इससे पहिले ही धोती-कुर्त्ता पहिने, पान चबाते हुए एक सज्जन उसके पास आकर कहने लगे—"क्यों परेशान हो रहे

हो ! अठन्नी मैंने दी थी और समझ-बूझ कर दी थी।"

भिखारी उस सज्जन का मुँह देखने लगा।

"हाँ, अब तुम इसे रख लो।"

"माई-बाप अठन्नी !"

"तो तुम्हें कम चाहियें ?"

"दो पैसे बहुत होते हैं मेरे मालिक ! आठ आने तो मेरे दिन भर की कमाई है।"

"तो अब घर जाओ, यह समझो कि सारे दिन की कमाई भगवान ने दिन निकलते ही दे दी। जाओ आराम करो।"

इतना कहकर वह सज्जन बस में जा बैठा। भिखारी खुश होकर आशीषें देने लगा—"तेरा भंडार भरा रहे मेरे दाता। मालिक तेरी रोज़ी-रोटी में बरकत दे ! भगवान तेरी अला-बला टाले !"

पास खड़े लोग भी तमाशबीन बने सब देखते सुनते रहे। बस का हॉर्न बजने लगा। बाहर आये सभी यात्री लपक-झपक कर बस में जा बैठे। बस चल पड़ी। बस का चलना था कि चाय की छोटी-सी दुकान से चायवाला शोर मचाता हुआ बस के पीछे भागा—"ठहरो ! ठहरो !! बस रोको !"

उसके हाथ में कुछ पैसे थे।

बस रुकी नहीं।

वह शोर मचाता रहा—"ड्राईवर बस रोको !"

सभी लोग कौतूहलवश देखने लगे कि चायवाला दौड़ती हुई बस के पीछे-पीछे दौड़ता जा रहा है। वह नंगे पाँव ही दौड़ता जा रहा था और शोर मचा रहा था—"कन्डक्टर बस रोको !"

कुछ दूर जाकर बस रुक गई। चायवाला दौड़कर बस के पास पहुँचा। कन्डक्टर दरवाजा खोलकर नीचे उत्तर आया। चायवाला बस के अन्दर गया और एक मिनट बाद ही बाहर चला आया। कन्डक्टर फिर चढ़ गया। उसने दरवाजा बन्द कर लिया। बस चल पड़ी। चायवाला हाँफते-हाँफते लौटने लगा। जब वह वापिस अपनी दुकान के पास पहुँचा तो जिज्ञासावश वहाँ खड़े लोगों ने जानना चाहा कि क्या हो गया था। वह कहने लगा—"अरे

बस ने हॉर्न बजाया तो बाबू अपने बाकी के पैसे लिये बिना ही दौड़ पड़े। नोट तो दे दिया चाय भी पूरी पी नहीं और लपक गये बस में।"

एक आदमी जो बस चूक गया था, बोल पड़ा—"जब उसे ही पैसों की चिन्ता नहीं थी तो तू बावलों की तरह क्यों पैसे देने पीछे दौड़ पड़ा।"

"अरे मुझे अपने लोक-परलोक की चिन्ता तो है। उसके एक रुपए के पीछे मैं अपना लोक-परलोक क्यों बिगाड़ूं।"

"तो क्या तू एक रुपया दे आया ?" उस आदमी ने पूछा।

"तो क्या करता, उस भले आदमी ने चाय तो पी नहीं। बेकार में रुपया भी छोड़ चला था। रास्ते भर उसका जी कलपता रहता, इधर मेरे और मेरे बच्चों का लोक-परलोक बिगड़ता। दे आया उसका रुपया उसे !"

वह अपनी दुकान पर पहुँच कर चाय के काम में लग गया। लोग भी तितर-बितर हो गये। रमेश ने शीला का हाथ पकड़कर कहा—"आओ चलें।"

कुछ लोग इन दोनों को भी कौतुहल से देख रहे थे। शीला ने चलते हुए कहा—"कैसे भोले लोग हैं गांव में !"

"भोला क्यों, ईमानदार कहो।"

"भोला है, इसलिये तो ईमानदार है।"

"नहीं, वह सिर्फ ईमानदार है, जिसे अपने ईमान का ख्याल है। उसने भोलेपन में कुछ नहीं किया। अपनी बुद्धि और समझ को काम में लेते हुए अपने ईमान के खातिर वह बस के पीछे दौड़ा और रुपया देकर आया। ग्राहक ने चाय नहीं पी तो उसके पैसे भी नहीं लिये। यह भोलापन नहीं, शुद्ध ईमानदारी है।"

"और वह लंगड़ा भिखारी ?"

"वह भी इसी जाति का आदमी है, अपने ईमान-धर्म पर कायम रहने वाला। कभी देखा और सुना तुमने आज तक ऐसा भिखारी जो इस तरह आवाजें लगाकर पैसे लौटाने की बातें करे !"

शीला ने प्यारभरी नजर से रमेश को देखकर कहा—"भिखारी तो नहीं मगर ईमानदार तो इससे भी बड़ा देखा है, जाना है।"

रमेश उसके शब्दों का भीतरी अर्थ समझे बिना ही कह उठा—"नहीं,

पैसे वाला आदमी ईमानदार हो तो बड़ी बात नहीं होती, लेकिन भिखारी, जिसके पास कुछ भी नहीं है, अगर ईमानदारी बरते तो बहुत बड़ी बात होती है।"

"और उन दोनों का दिल भी तो देखो जिसने भिखारी को अठन्नी दी और जो चाय पीने से पहिले ही रुपया देकर चाय पीये बिना ही अपना रुपया छोड़कर चला जाता है।"

"ये लोग ईमानदार से ज्यादा भोले कहे जा सकते हैं। मगर आज की दुनिया में ऐसे लोग भी कहाँ मिलते हैं।"

"ईमानदारों की दुनिया में कमी तो नहीं है!"

"है, बहुत कमी है।"

"तुम्हें ईमानदार लोग मिले नहीं, सब बेईमान ही मिले इसीलिये तुम ऐसा कहती हो।"

"मुझ पर तो भगवान की कृपा है, बड़े प्यारे और ईमानदार लोग मुझे मिले हुए हैं।"

शीला ने लजाकर एक अर्थपूर्ण दृष्टि से उसे देखा। दोनों खेतों की मेढ़ से होते हुए धीरे-धीरे घर की तरफ बढ़ रहे थे। शीला ने कहा—"मन करता है कि अब यहीं इसी गाँव में रह जायें!"

"क्यों?"

"कितनी शान्ति, सुख है यहाँ। भीड़-भाड़, कोलाहल से दूर, सच्चे और अच्छे आदमियों के साथ जीवन बिताने में कितना आनन्द आता है।"

"हाँ आता तो है पर······"

रमेश अटक गया तो शीला ने पूछा—"पर क्या?"

"यहाँ हम कब तक रह सकते हैं। शंकरदयाल जी भले आदमी हैं, मेरे लिये अपना घर दे दिया, मगर आखिर तो हमें शहर ही जाना होगा।"

"तुम विवशता की बात मत करो, मन की बात करो।"

"मन की बात तो यही है कि अब इसी तरह जिन्दगी पूरी हो जाये।"

शीला ने मुस्करा कर पूछा—"इसी तरह से मतलब?"

"बस इसी गाँव में।"

"हो जायेगा, मैं अगले सप्ताह शहर जा रही हूँ और तुम यहीं रहना।"

"नहीं, नहीं, तुम्हारा यहाँ रहना भी इसी तरह में शामिल है।"

दोनों हँस पड़े।

"क्या ही अच्छा हो, अगर ऐसा हो सके!"

"हो जायेगा।"

"तुम तो कामधेनु की तरह बोलती जा रही हो।"

"तुम भी तो तपस्यालीन भक्त की तरह इच्छित फल की कामना कर रहे हो।"

"तो आज तुम वरदान देने पर उतारू हो!"

"माँगो।"

"जिसकी माँग मेरे नाम से भरी जाने की बात चली हो, उससे मैं क्या माँगू!"

शीला कुछ कहती, मगर दोनों ने देखा कि मास्टरजी उन्हें पुकारते हुए सामने से उन्हीं की तरफ आ रहे हैं। पास आकर उन्होंने कहा—"अरे आज किधर निकल गये थे तुम लोग!"

"पिताजी आज हम बस-स्टॉप की तरफ गये थे। मंडी में घूमते हुए इधर आ रहे हैं!"

"अरे तो वहाँ शंकरदयाल जी नहीं मिले तुम्हें?"

"जी नहीं।"

"चलो घर जल्दी से! वे कब से घर पर आये बैठे हैं।"

मास्टरजी को उल्लसित और हर्ष-विभोर देखकर रमेश ने उनसे पूछा—"क्या कोई बहुत अच्छी खबर लाये हैं?"

"हाँ।"

"क्या है पिताजी?" शीला ने पूछा।

"यहाँ नहीं, घर चलकर ही बताऊँगा।"

फिर मास्टरजी ने रमेश के पास आकर उसे अपनी बाहों में भरकर कहा—"तुम बहुत ही भाग्यशाली लड़के हो रमेश! आज मैं बहुत खुश हूँ। ईमानदारी के लिये लड़ी गई तुम्हारी लड़ाई में तुम जीत गये हो।"

"कुछ कहिये तो।"

"वस घर चलो।"

मास्टरजी जल्दी-जल्दी कदम उठाते हुए दोनों को अपने साथ लेकर घर पहुँचे। शंकरदयाल वैठे उन्हीं का इन्तजार कर रहे थे। रमेश को देखते ही उन्होंने उसका माथा चूमा और कहा—"देखा रमेश, ईमानदारी का फल देर से लगता है, मगर वहुत मीठा लगता है। शहर में जिन लोगों से तुम्हारा व्यवहार हुआ था, मैंने सभी की खवर ली है। भ्रष्टाचार विरोधी अभियान में सवके सव फँस गये हैं। कोई साल के लिये तो कोई दो साल के लिये भीतर चला गया है। किसी को लाखों का जुर्माना देना पड़ा है। सरकार ने किसी को नहीं छोड़ा। तुम्हें भी नहीं।"

रमेश चौंक पड़ा। शीला भी घवरा गई। उसने पूछा—"मैंने क्या किया है?"

"तुमने जो किया वह कौन कर सकता है रमेश! अपने आदर्श के खातिर तुम्हारे त्याग को जानकर तो सरकार को भी सराहना करनी पड़ी। लो, ये कागज। तुम अव इस गाँव के शिक्षा-केन्द्र अधिकारी हो।

शीला तो हर्ष के आँसू रोक नहीं सकी तो भीतर चली गई।

शंकरदयाल ने अपने पास वैठाकर उसे विस्तार में सभी बातें वतलाई और यह भी वताया कि भार्गव साहव ने खुद मुख्य मंत्री से मिलकर तथा विशेष कारण बताकर यह सव व्यवस्था की है। यह भी वताया कि कुछ देर वाद भार्गव साहव खुद अपनी कार से यहाँ गाँव में आने वाले हैं।"

रमेश मारे हर्ष के आत्म-विभोर हो गया। शब्द उसके कंठ में अवरुद्ध हो गये। उसने झुककर शंकरदयाल फिर मास्टरजी के पाँव छुए। मास्टरजी तो रो ही पड़े और उसे छाती से लगाकर वोले—"मैं तो तुझ से मुँह ही मोड़ चला था मेरे बच्चे! भगवान ने मुझे वचा लिया। शीला जैसी वेटी और तुम जैसा जमाता जिसे मिल जाय वह और किस धन की इच्छा करेगा।"

"आपका आशीर्वाद ही फल लाया है।"

फिर वह शंकरदयाल की ओर मुड़ कर वोला—"आपने मेरे लिये जो कुछ किया है, उसका भार इस जीवन में तो मेरे सिर से नहीं उतरेगा।"

"ऐसा कुछ भी नहीं है रमेश ! मैं तुम्हारे लिये क्या कर सकता था, अगर तुम्हारे अपने गुण, चरित्र और आदर्श में शक्ति न होती तो ! सच तो यह है कि तुम्हारी खूबियाँ ही रंग लाई हैं। दुनिया में तुरन्त फल पाने वाला जल्दबाजी में बेईमान बनकर रह जाता है, मगर धैर्य, सब्र व शान्ति से फल पाने वाले ईमानदार बहुत ही कम हैं। खैर ! तुम नहा-धोकर तैयार हो जाओ। मैं और मास्टरजी मंडी की तरफ जाते हैं। भार्गव साहब आते ही होंगे। वे तुम से मिलने आ रहे हैं।"

इतना कहकर वे उठ खड़े हुए और मास्टरजी से बोले—"आईये मास्टरजी।"

"मास्टरजी भी उनके साथ बाहर चल दिये।"

जब दोनों चले गये तो रमेश शीला को आवाज देता हुआ रसोई में गया। शीला वहाँ खड़ी हर्ष के आँसू बहा रही थी। वह रमेश से लिपट कर रो पड़ी। वह हैरान होकर पूछने लगा—"इतनी ज्यादा खुश हो तुम !"

"शीला ने मुँह उठाकर कहा—"ये आँसू खुशी के नहीं, दुःख के हैं।"

"दुःख ! कैसा दुःख ?"

"ताई के न होने का दुःख ! काश ! वह भी यह दिन देखने के लिये जिन्दा होती। तुम शिक्षा-केन्द्र के अधिकारी, सरकार द्वारा बनाये गये हो। तनख्वाह ! रहने के लिये घर, खेती के लिये जमीन देकर ! कितने भाग्यशाली हो तुम !"

"हाँ हूँ तो ! माँ होती तो और भी ज्यादा भाग्यशाली होता। वह नहीं है, अब तुम हो ! मेरे लिये जो साहस तुमने दिखाया और जो आवाज़ तुमने उठाई वह कम लड़कियों में ही होता है।"

कहते-कहते रमेश की आँखें भी सजल हो उठीं। शीला ने प्यार से अपना आँचल उसके चेहरे पर ले जाते हुए कहा—"सुना नहीं, क्या कहा अभी शंकरदयाल जी ने। वे तुम्हारे लिये कुछ नहीं कर सकते थे अगर तुम्हारे में अपनी खूबियाँ न होतीं। मैं भी तुम्हारे लिये पिताजी से नहीं लड़ सकती थी अगर तुम्हारा अपना व्यक्तित्व मुझ से भारी न होता। तुम्हारी खूबियों को देखकर कोई भी लड़की, किसी भी हद तक हिम्मत कर सकती है।"

रमेश कुछ बोलने जा रहा था, मगर बाहर की आहट से दोनों सतर्क हो गयें। मास्टरजी भार्गव साहब को लेकर भीतर घुस रहे थे। पीछे-पीछे शंकर

ગુજરાતી સાહિત્ય પરિષદ ગ્રંથાલય
અમદાવાદ - ૯